वैज्ञानिक चिंतन की आवाज़

तर्कशील पथ

TARKSHEEL PATH

जुलाई - अगस्त 2024

मूल नक्षत्र-ज्योतिषियों
का धंधा (3)

30



पत्थर का चमत्कार
(7)



लुई पास्चर
(9)



तुम्हारी जात-पाँत
की क्षय (36)



मैरी क्यूरी की याद में
(28)

''मैंने कब्रिस्तान में उन लोगों की कब्रें भी देखी हैं जिन्होंने इस लिए संघर्ष नही किया कि कहीं वे मारे ना जाएं'' ...चे ग्वेरा

कविता के हत्यारे...



सुरजीत पातर (पंजाबी कवि)
(14 .01. 1945 - 11.05 2024)

मैं पहली पंक्ति लिखता हूं
और डर जाता हूं राजा के सिपाहियों से
पंक्ति काट देता हूं
मैं दूसरी पंक्ति लिखता हूं
और डर जाता हूं बाग़ी गुरिल्लों से
पंक्ति काट देता हूं
मैंने अपने प्राणों की ख़ातिर
अपनी हज़ारों पंक्तियों को
ऐसे ही क़त्ल किया है
उन पंक्तियों की ज़मीर
अक्सर मेरे आसपास ही रहती हैं
और मुझे कहती हैं:
कवि साहिब
कवि हैं या कविता के क़ातिल हैं आप?
सुने मुंसिफ़ बहुत इंसाफ़ के क़ातिल
बड़े धर्म के रखवाले
ख़ुद धर्म की ज़मीर को
क़त्ल करते भी सुने थे
सिर्फ़ यही सुनना बाक़ी था
कि हमारे वक़्त में ख़ौफ़ के मारे
कवि भी बन गए
कविता के हत्यारे।

अनुवाद : कात्यायनी (हिंदी कवयित्री)

मुख्य संपादक
बलबीर लौंगोवाल
balbirlongowal1966@gmail.com
98153 17028
संपादक
गुरमीत अम्बाला
tarksheeleditor@gmail.com
94160 36203
संपादकी मंडल
अजायब जलालाना (94167 24331)
कृष्ण कायत (98961 05643)

विदेशी प्रतिनिद्धि
अवतार बाई कनेडा
प्रधान TRSC (+1-672-558-5757)
अछर सिंह खरलवीर कवैंटरी (इंगलैंड)
(+44-748-635-1185)
मा. भजन सिंह कनेडा, बलदेव रहिपा टोरांटो

पत्रिका शुल्क :-
वार्षिक : 150/- रू.
विदेश : वार्षिक : 40 यू.एस.डॉलर
रचनाएं, पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के लिए पता:
मुख्य कार्यालय
तर्कशील भवन, संघेडा बाईपास
तर्कशील चौंक, बरनाला-148101
01679-241466, 98769 53561
tarkshiloffice@gmail.com
पत्रिका को पढ़ने के लिए लॉग ऑन करें:
www.tarksheel.org
Tarksheel Mobile App :
Readwhere.com

राजेन्द्र भदौड़, प्रकाशक,मुद्रक,स्वामी की तरफ से तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि.) द्वारा अप्पू आर्ट प्रैस, शाहकोट (जलन्धर) से मुद्रित करके मुख्य कार्यालय तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि.), बरनाला, (पंजाब) से तर्कशील सोसायटी पंजाब व हरियाणा के माध्यम से वितरण के लिए जारी किया।

तर्कशील पथ पत्रिका हेतु शुल्क
पंजाब नैशनल बैंक में
तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि.) के नाम से
खाता सं. 0044000100282234
IFSC: PUNB0004400 में जमा करा सकते है।
एंव पत्रिका भेजने के लिए एड्रेस व शुल्क की स्क्रीन शॉट/रसीद मोबाइल नम्बर
+91 98156 70725 पर वट्सएप कर दें।

इस अंक में

आनलाईन पत्रिका को पढ़ने के लिए :

www.tarksheel.org,
http://tarksheelblog.
wordpress.com
सर्च करें: tarksheel :
www.archive.org
Readwhere.com

संपादकीय

'हमारी रणनीति सिर्फ साम्राज्य का सामना करने की नहीं, बल्कि उसे घेरने की, उसे ऑक्सीजन से वंचित करने की होनी चाहिए। हमारी कला, हमारा संगीत, हमारा साहित्य, हमारी निरंतरता... और हमारी अपनी कहानियाँ बताने की क्षमता, ऐसी कहानियाँ जो उन कहानियों से भिन्न हैं जिन पर विश्वास करने के लिए हमारा ब्रेनवॉश किया गया है। कॉर्पोरेट क्रांति ध्वस्त हो जाएगी यदि हम वह खरीदने से इनकार कर दें जो गैर जरूरी है। वे हमें बेच रहे हैं-उनके विचार, इतिहास के संस्करण, युद्ध, हथियार, अपरिहार्यता की उनकी धारणाएं आदि। यह याद रखें: हम अनेक हैं और वे कम हैं। एक अधिक सुखद दुनिया न केवल संभव है, बल्कि वह आने वाली है। आप मेरी तरह उनकी सांसें सुन सकते हैं' इन विचारों की प्रसिद्ध लेखिका, सामाजिक कार्यकर्ता, दार्शनिक अरुंधती राय और कश्मीर केंद्रीय यूनिवर्सिटी के पूर्व प्रो. डाक्टर शेख शौकत हुसैन पर केंद्र ने करीब 14 साल पुराने एक मामले में गैरकानूनी गतिविधि रोकथाम अधिनियम (U.A.P.A.-Unlawful Activities Prevention Act) के तहत मुकदमा चलाने की मंजूरी दे दी है। इस मामले में, कश्मीर के एक संघीय कार्यकर्ता सुशील पंडित की शिकायत पर 28 अक्टूबर 2010 को दिल्ली में दिए गए एक भाषण में कश्मीर के बारे में उनकी टिप्पणियों के आधार पर एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। सरकार की यह कार्रवाई सभी जनपक्षधर आवाजों को दबाने की उसकी फासीवादी नीति का हिस्सा है। अरुंधति रॉय ने 16 साल की उम्र में घर छोड़ दिया था। गोवा के समुद्र तटों पर केक बेचे और एक फिल्म में अभिनय भी किया। अपनी पुस्तक ''द गॉड ऑफ स्मॉल थिंग्स'' के लिए बुकर पुरस्कार जीतने वाली अरुंधति रॉय ने 9 से अधिक किताबें लिखी हैं। दिल्ली स्कूल ऑफ आर्किटेक्चर से पढ़ाई करने वाली इस 60 वर्षीय लेखिका ने प्रोडक्शन डिजाइनर के रूप में भी काम किया। अरुंधति रॉय ने सात नॉन-फिक्शन (अगाल्पी) किताबें भी लिखी हैं। इनमें 1999 में जारी ''कॉस्ट ऑफ लिविंग'' भी शामिल है, जिसमें विवादास्पद नर्मदा बांध परियोजना और परमाणु परीक्षण कार्यक्रम के लिए सरकार की कड़ी आलोचना की गई थी। उनके राष्ट्रीय एवं अंतराष्ट्रीय पत्रिकाओं, पुस्तकों आदि में अनगिनत लेख प्रकाशित होते रहते हैं। रॉय ने भारत में नक्सली आंदोलन पर भी बहुत कुछ लिखा। उन्होंने अक्सर कहा है कि आदिवासियों को सशस्त्र संघर्ष में शामिल होने के अलावा कुछ नहीं मिलता, वह और क्या करेगा? अरुंधति रॉय हमेशा लेखन और कार्रवाई दोनों में सरकार की फासीवादी नीतियों के खिलाफ मजबूती से खड़ी रही हैं। भीमा कोरेगांव मामले में गलत तरीके से फंसाए गए सैकड़ों बुद्धिजीवियों की तरह, वह भी सरकार के निशाने पर रही है। किसी वर्गीय समाज में श्रमिक समाज के लेखक को लुटेरे प्रबंधन द्वारा निशाना बनाया जाना कोई असामान्य घटना नहीं है। यह बेहद जरूरी है कि जिस वर्ग की वह लेखिका हैं, उसकी सशक्त आवाज और संघर्ष जनपक्षधर विचारधारा पर इस एक ओर हमले के खिलाफ उठे। इतिहास गवाह है कि दुनिया के किसी भी कोने में कोई भी जोर-जबरदस्ती, जेल, फाँसी वीरों को झुका नहीं सकी है। जनपक्षधर सामाजिक परिवर्तन अटल है। आइए इस जुल्म के खिलाफ मजबूती से आवाज उठाएं।

- बलबीर लौंगोवाल

अंधविश्वास उन्मूलन की जिम्मेदारी

–गनपत लाल

आजकल अंधविश्वास चरम सीमा पर है। सुबह अखबार के पन्ने पलटते ही राशिफल दिख जाएगा। टेलीविजन चालू करते ही कोई ज्योतिषी भविष्यफल बताते हुए दिखाई देगा। दिन के उजाले हो या रात के अंधेरे सभी जगहों पर अंधविश्वास की काली छाया व्याप्त है। व्यक्ति के जन्म से पहले व मृत्यु के बाद भी अंधविश्वास का सिलसिला जारी रहता है और इसके फेर में लोग खुद व अपने पूरा परिवार का नुकसान करते रहते हैं, लेकिन सबसे बड़ा सवाल है तमाम अंधविश्वास, पाखंड और रूड़ीवाद खत्म करेंगे कौन?

सभी अंधविश्वासों का उन्मूलन बुद्धिजीवी वर्ग की जिम्मेदारी

सभी अंधविश्वासों के उन्मूलन की जिम्मेदारी बुद्धिजीवी वर्ग के लोगों की है। अब यह समझदार लोग कौन है? इसमें हम शिक्षक, पत्रकार, लेखक, वैज्ञानिक, चिकित्सक और कलाकार को शामिल कर सकते हैं, लेकिन क्या सच में ये लोग तार्किक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के हैं। आप देखेंगे इनमें से बहुत से लोंगों की कथनी और करनी में जमीन–आसमान का अंतर है। ये लोग खुद अंधविश्वास के जाल में जकड़े हुए हैं और आम आदमी इनको देखकर अंधविश्वास की खाई में भेड़धसान गिर रहे हैं।

समाज में शिक्षक का महत्पूर्ण स्थान

समाज में शिक्षक का महत्पूर्ण स्थान है। शिक्षक ही बच्चों को अज्ञानता से ज्ञान के प्रकाश में ले जाते हैं, लेकिन आज बच्चों को स्कूल में ही अंधविश्वास और पाखंड का प्रशिक्षण मिल जाता है। भारत देश धर्म निरपेक्ष होने के बाद भी कक्षा लगने से पहले वंदना की जाती है। कक्षाओं में देवी–देवताओं की तस्वीरें लटकी दिखाई देगी। कक्षा प्रवेश से पहले विद्यार्थी दैवी तस्वीर की पूजा करते हैं। गुरूवार को पूजा के लिए नारियल फोड़ा जाता है। ये सब कार्य वहां के शिक्षकों के नेतृत्व में होते हैं। जब ज्ञान देने वाले ही अज्ञानता में डूबे हो तों बच्चों में तार्किक और वैज्ञानिक सोच की कल्पना ही नहीं की जा सकती। जब बच्चों को खुद पर विश्वास न होकर खुदा पर भरोसा होने लगता है तो उसका मनोबल पूरी तरह से कमजोर हो जाता है। बच्चे मेहनत में कम और पूजा–पाठ व पाखंड में ज्यादा ध्यान देने लगते हैं, जिससे उसका भविष्य अंधकार में चला जाता है।

बच्चों के मन से भगवान और शैतान के डर को करें दूर

बच्चों के भविष्य के लिए जिम्मेदार शिक्षकों को चाहिए कि वे बच्चों के मन से भगवान और शैतान के डर को दूर करें। साथ ही उनके अंदर तार्किक और वैज्ञानिक समझ विकसित करें। आसपास घटने वाली घटनाओं के बारे में वैज्ञानिक ढंग से समझाएं। काल्पनिक बातों का खुलकर खंडन करें।

अंधविश्वास फैलाने में सबसे बड़ा हाथ मीडिया का

आजकल अंधविश्वास फैलाने में सबसे बड़ा हाथ मीडिया का है। इसके अंतर्गत प्रिंट, इलेक्ट्रानिक और सोशल मीडिया को रख सकते हैं। आज ज्यादा पत्रकारिता पूरी तरह से मर चुकी है। पत्रकारिता के नाम पर नेताओं और पाखंडी बाबाओं की चाटुकारिता हो रही हैं। ज्यादा मीडिया सर्कुलेशन और टीआरपी बढ़ाने के लिए कई घटिया हथकंडे अपना रहा है। राषिफल, भविष्यफल, इच्छाधारी नाग–नागिन, पूजा–पाठ, व्रत–उपवास, दिव्य–चमत्कार जैसी काल्पनिक चीजों को परोसने में ज्यादा अखबार, टेलीविजन और वेबपोर्टल लगे हुए हैं। इसके अलावा डरावनी भूत–प्रेत वाली फिल्में धड़ल्ले से बन रही है। सुबह से लेकर रात तक लोग यहीं चीजें देखकर विवेक को खो रहे हैं। मीडिया को चाहिए कि सभी काल्पनिक चीजों का खंडन कर ज्ञानवर्धक सामग्री प्रकाशित और प्रसारित करें। सभी पत्रकारों की जिम्मेदारी है कि वे लोगों में वैज्ञानिक चेतना जगाएं, तभी बेहतर समाज का निर्माण हो पाएगा। वहीं लेखकों को भी चाहिए कि वे तार्किक कहानी, उपन्यास और लेख लिखें, जिससे लोग सही ढंग से जीवन जीना सीख सकें। मंच और फिल्म के कलाकारों को भी यर्थाथ और जनता के मुद्दों की स्टोरी पर काम करें।

पाखंडी बाबाओं और धर्मगुरुओं को जेल में डालें

अब वैज्ञानिक दृष्टिकोण को फैलाने का सबसे बड़ा योगदान वैज्ञानिक और चिकित्सक का है। वैज्ञानिकों को चाहिए कि नई–नई खोज करते रहे और अंधविश्वास का जोरदार विरोध करें। वहीं चिकित्सकों को चाहिए कि भगवान भरोसे न रहकर मरीजों को बचाने के लिए लगातार शोध पर मेहनत करते रहे। अस्पताल में काल्पनिक देवी–देवताओं की तस्वीरें बिल्कुल न रखें और मरीजों को मेडिकल साइंस पर भरोसा दिलाएं। वहीं आजकल के नेता **शेष पृष्ठ 3 पर**

मूल नक्षत्र-ज्योतिषियों का धंधा

टिकेश कुमार

लोगों को ज्योतिष हमेशा ठगते आया है और लोग बिना सोचे समझे उसकी जाल में फंसकर मेहनत की कमाई को लुटाते आ रहे हैं। इसमें मूल नक्षत्र भी एक ठगने का षड्यंत्र है। बच्चा पैदा होते ही नक्षत्र देखने के लिए किसी ज्योतिषी को बुला लाते है और उससे बच्चा किस नक्षत्र में हुआ है देखने को कहते हैं।

क्या कहते हैं ज्योतिष

ज्योतिष के अनुसार नक्षत्र 27 होते हैं, जिसमें 6 मूल नक्षत्र है। नक्षत्र का स्वामी केतु को माना जाता है। आठ वर्ष के बाद मूल नक्षत्र का प्रभाव अपने आप खत्म हो जाता है ऐसा कहा जाता है। मूल नक्षत्र में बच्चा पैदा हुआ है तो उस शिशु को अपने पिता से दूर रखा जाता है, पिता की नजर, छाया शिशु पर नहीं पड़नी चाहिए। अगर पड़ जाए तो पिता मर जाएगा या नवजात शिशु की सेहत पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। मूल नक्षत्र को 27 दिनों के अंदर में तोड़ना होता है ऐसा ज्योतिषी का कहना है।

ज्योतिष नक्षत्र के नाम पर लूटता है

मूल नक्षत्र तोड़ने के नाम पर ज्योतिषी को बहुत से पैसे की कमाई हो जाती है। लोगों को नक्षत्र के नाम पर डराया जाता है जिससे उसका व्यापार चलता रहे। अगर मूल नक्षत्र का प्रभाव होता तो उस समय जन्में सभी बच्चें में इसका प्रभाव देखे जाते, लेकिन ऐसा नहीं होता है। एक हिन्दू के यहां जन्मा शिशु को मूल नक्षत्र का डर रहता है तो दूसरी ओर मुस्लिम या अन्य किसी धर्म में जन्में शिशु को मूल नक्षत्र से कोई लेना-देना नहीं होता है। अगर ग्रह का प्रभाव व्यक्ति पर पड़ता है तो हर धर्म में अलग-अलग प्रभाव कैसे हो सकता है? एक ही होना चाहिए। विज्ञान का नियम हर व्यक्ति के लिए एक ही होता है। किसी से भेदभाव नहीं करता है। हिन्दू है तो उसे कोरोना होगा या मुस्लिम है तो उसे कोरोना नहीं होगा। ऐसे तो नहीं होता है। कोई भी वायरस या रोग कोई भी धर्म और जाति को नहीं देखता है, तो ये नक्षत्र कैसे एक ही धर्म के लोगों के लिए है।

स्वार्थ के लिए नक्षत्र का खेल

ज्योतिषी अपना स्वार्थ के लिए नक्षत्र का खेल खेलता है। कोई भी ग्रह का अगर प्रभाव अच्छा या बुरा पड़ेगा तो सभी पर बराबर पड़ेगा। एक शिशु गरीब के यहां जन्म लिया और उसी समय अमीर के यहां भी शिशु का जन्म हुआ तो क्या दोनों में मूल नक्षत्र पड़ेगा? बिल्कुल नहीं, नक्षत्र का प्रभाव नहीं होता है। यहां पर आर्थिक स्थिति सबसे अधिक मायने रखती है। गरीब के घर में जन्में शिशु की सही देखभाल नहीं हो पाती है, जिससे उस शिशु का सही विकास नहीं हो पाता है। इस वजह से उसे स्वास्थ्य, शिक्षा और बेहतर रोजगार नहीं मिल पाते हैं। उसे हर समय जिंदगी तकलीफ देती है और पढ़ने के समय में रोजगार की तालाश में लगा रहता है। खाने के लिए संघर्ष करता रहता है।

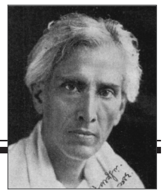
आर्थिक और सामाजिक स्थिति का प्रभाव

वहीं दूसरी तरफ अमीर के घर में जन्में शिशु का सही समय में सब सुख-सुविधा के कारण शिशु को कोई कष्ट नहीं होता है और वह शिशु को हर चीज, जो वह चाहता है पैसे के बलबूते मिल जाता है। स्वास्थ्य के साथ ही बेहतर शिक्षा मिलने के कारण उसे कोई तकलीफ नहीं होती है। ये सब कारण के पीछे कोई मूल नक्षत्र नहीं होता है, बल्कि परिवार की आर्थिक और सामाजिक स्थिति है. लेकिन लोगों की गरीबी और अज्ञानता का फायदा उठाकर ज्योतिषी अपना धंधा चमकाता रहता है और अपनी जेब भरता रहता है। कुछ बुरा हो जाने के भय से लोग ज्योतिषी के जाल में फंस जाते हैं। हमें चाहिए कि बच्चे की परवरिश, खान-पान, साफ-सफाई और शिक्षा पर ध्यान दें और डर की दुकान चलाने वाले ज्योतिष्यों से दूर रहे तभी हमारी आने वाली पीढ़ी का बेहतर भविष्य होगा।

पृष्ठ 2 का शेष और अधिकारियों को चाहिएं कि अंधविश्वास-पाखंड से दूर रहे और अंधविश्वास फैलाने व इसके नाम पर जनता को लूटने वाले पाखंडी बाबाओं और धर्मगुरुओं को जेल में डालें। तभी देश में खुशहाली ही खुशहाली होगी।

-सांगठनिक सलाहकार (एंटी सुपरस्टीशन ऑर्गेनाइजेशन)

लालू



– शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय

(बंगला के प्रख्यात कथाकार जिनकी कहानियाँ और उपन्यास भारत की सभी भाषाओं में लोकप्रिय है)

सब उसे लालू कहकर पुकारते थे। हालाँकि उसका असली नाम कुछ और ही था, जो मुझे याद नहीं। हिन्दी में 'लाल' शब्द का अर्थ होता है– प्रिय। उसका यह नाम किसने रखा मुझे नहीं पता, लेकिन व्यक्ति के साथ नाम का ऐसा तालमेल कभी–कभी हो जाता है। वह सबका प्रिय था।

स्कूल की पढ़ाई पूरी कर हम सबने कॉलेज में दाखिला ले लिया था लेकिन लालू बोला कि वह धन्धा करेगा। माँ से 10 रुपये लेकर उसने ठेकेदारी का काम शुरू कर दिया। हम लोग उससे कहते–लालू तेरी पूँजी तो बस दस रुपये है! वह हँसकर कहता–और कितना चाहिए, यह काफ़ी है।

सब लोक उसे पसन्द करते थे, उसका काम चल निकला। फिर अक्सर हमें कॉलेज के रास्ते में दिख जाता कि लालू कुछेक कुली–मजदूरों को लेकर छोटे–छोटे मरम्मत कामों में जुटा हुआ है। हम लोगों को देखकर हँसते हुए कहता – जा जा दौड़ लगा–नहीं तो ऐबसेण्ट लग जायेगी।

जब हम लोग ओर छोटे थे और बंगला स्कूल में पढ़ते थे, तब वह हम सभी का मिस्त्री हुआ करता था। उसके कॉपी–किताब वाले झोले में हमेशा एक मूसल, नेलकटर, एक टूटी छुरी, छेद करने वाली एक पुरानी ड्रिल और घोड़े की एक नाल मौजूद रहते थे; पता नहीं उसने ये सारी चीज़ें कहाँ से जुगाड़ी थी, लेकिन ऐसा कोई काम नहीं था जो वह इन चीज़ों के द्वारा नहीं कर सकता हो। स्कूलभर की टूटी छतरियाँ सुधारना, स्लेट के फ्रेम की मरम्मत, खेलते–खेलते अगर कपड़े फट जायें तो तुरन्त उन्हें सिल देना, और ऐसे और भी कितने ही काम...। वह कभी भी किसी भी काम में ना नहीं कहता था। एक बार छठ त्योहार के दिन थोड़े–से पैसों से रंगीन काग़ज और स्पंजवुड ख़रीदकर न जाने कौन–से खिलौने बनाकर उन्हें बेचकर उसने ढाई रुपये कमाये थे और उन पैसों से उसने हमें भरपेट तली हुई मूँगफली खिलायी थी।

साल–दर–साल बीत गये, हम लोग बड़े हो गये। जिम्नास्टिक में लालू की बराबरी कर सकने वाला कोई नहीं था। उसके शरीर में जिस तरह असाधारण शक्ति थी, ठीक वैसे ही उसमें साहस भी ग़ज़ब का था। डर किसे कहते हैं मानो उसे पता ही नहीं था। हर किसी के बुलावे पर वह तुरन्त हाजिर हो जाता था, हर किसी की मुसीबत के समय वह सबसे पहले आ धमकता था। उसमें केवल एक ही बुरी आदत थी, उसे किसी को डराने का मौका मिलने पर खुद को रोक नहीं पाता था। हमें समझ में ही नहीं आता था कि डर दिखाने की ऐसी अनोखी तरकीबें पलभर में उसके दिमाग़ में कैसे आ जाया करती थीं। एक–दो घटनाएँ सुनाता हूँ।

मोहल्ले के मनोहर चटर्जी के यहाँ पूजा का आयोजन था। बलि देने का मुहूर्त निकला जा रहा था लेकिन बलि देने वाला व्यक्ति अनुपस्थित था। लोग उसे लेने गये लेकिन उन्होंने देखा कि वह तो पेट दर्द की वजह से बेहोश पड़ा था। लौटकर लोगों ने यह जानकारी दी। सब लोग सिर पर हाथ धरे बैठ गये–अब क्या करें? इतनी रात गये अब बलि देने वाला कहाँ मिलेगा? पूजा भ्रष्ट हो जायेगी! किसी ने कहा कि लालू बकरा काट सकता है। वह पहले भी बहुत सारे बकरे काट चुका है। लोग उसके पास जा पहुँचे, लालू नींद से उठ बैठा, और बोला – नहीं।

'नहीं' क्यों जी? पूजा में अगर बाधा पहुँची तो सर्वनाश हो जायेगा!

लालू बोला, सर्वनाश होता हो तो होने दो। बचपन में मैं यह काम करता था लेकिन अब नहीं करूँगा।

जो लोग उसे बुलाने आये थे वे सब सिर कूटने लगे, केवल दस–पन्द्रह मिनट बचे थे, उसके बाद सब कुछ ख़त्म हो जाना था और ऐसे में दैवी शक्ति के गुस्से से किसी का बच पाना सम्भव नहीं था। लालू के पिता ने उसे जाने का आदेश दिया। वे बोले, ये लेग निरुपाय हैं इसलिए यहाँ आये हैं– नहीं गये तो अन्याय होगा। तुम जाओ। उस आदेश को नामंजूर करने का साहस लालू में नहीं था।

लालू को देखकर चटर्जी बाबू की चिन्ता दूर हो गयी। समय नहीं था–तुरतफुरत बलि के बकरे के माथे पर सिन्दूर का टीका लगाया गया, गले में माला डाली गयी तथा उसे

बलिदेवी पर ले जाकर खड़ा करवा दिया गया। घर भर के लोगों की 'माँ माँ' कहती चीखों के बीच मजबूर उस मासूम के जीवन की अन्तिम डरी हुई आवाज़ जाने कहाँ डूब गयी, लालू के हाथ का फरसा पलभर में ऊपर उठकर नीचे आ गिरा और कटे हुए सिर से निकलती ख़ून की धार ने काली मिट्टी को लाल कर दिया। लालू थोड़ी देर तक आँखें बन्द किये रहा। बलि के मौके पर बज रहे ढोल और काँसे की थाली की आवाज़ धीरे-धीरे कम हो आयी। पास में खड़ा-खड़ा जो बकरा थरथर काँप रहा था, इस बार उसके माथे पर सिन्दूर लगाया गया और गले में लाल फूलों की माला डाली गयी, फिर से वही बलिवेदी, वहीं अन्तिम भयंकर मिमियाहट, वही लोगों की आवाज़ में 'माँ-माँ' का जाप। खून से सना लालू का फरसा ऊपर उठकर पलभर में नीचे उतर आया- जानवर का दो टुकड़ों में बँटा हुआ शरीर ज़मीन पर एक-दो बार हाथ-पैर हिलाता हुआ जाने किससे अन्तिम शिकायत करता थम गया; उसके कटे गले की खून की धार ने लाल मिट्टी को थोड़ा और लाल कर दिया।

ढोल बजाने वाले पागलों की तरह ढोल पीटे जा रहे थे, आँगन में भीड़ किये हुए लोग तमाम तरह की बातें करते शोर मचा रहे थे, सामने वाले बरामदे में कालीन के आसन पर बैठे मनोहर चटर्जी आँखे बन्द कर भगवान का नाम जप रहे थे कि अचानक लालू भयंकर आवाज़ में गरज उठा। चारों ओर सन्नाटा पसर गया-सब लोग आश्चर्य से भर उठे-कि यह क्या हुआ! लालू की बड़ी-बड़ी आँखों की पुतलियाँ मानो भन्न-भन्न घूम रही थीं, वह चीखकर बोला, ओर बकरे कहाँ हैं?

उस घर के किसी व्यक्ति ने डरते-डरते कहा, अब ओर बकरे तो नहीं है। हमारे यहां तो केवल दो बकरों की बलि चढ़ायी जाती है।

ख़ून से सना फरसा सिर के ऊपर दो-तीन बार घुमाते हुए लालू ने भयंकर कर्कश आवाज़ में गरजते हुए कहा- बकरे नहीं है? यह नहीं चलेगा। मुझ पर खून सवार हो गया है-बकरा लाओ, नहीं तों मुझे जो भी सामने दिखेगा मैं उसी को पकड़कर नरबलि चढ़ा दूँगा! ऐसा कहकर ही वह एक छलाँग लगाकर बलिवेदी के इस पार से उस पार जा पहुँचा, उस वक्त उसके हाथों का फरसा भन्न-भन्न घूम रहा था। वहाँ जो माहौल था, शब्दों में उसे नहीं कहा जा सकता। वहां मौजूद सभी लोग बड़े दरवाज़े की ओर भागने लगे ताकि लालू न पकड़ ले। भागने के चक्कर में वहाँ भयंकर भगदड़ मच गयी। कोई ज़मीन पर गिरा पड़ा था, तो कोई लुढ़कते हुए लोगों के पैरों के बीच में से निकलने की कोशिश कर रहा था, किसी की गर्दन किसी की काँख में दबी हुई थी और इस वजह से उसका दम घुटा जा रहा था। एक आदमी ओरों के कन्धों पर से होते हुए निकल भागने की कोशिश में ज़मीन पर औंधेमूंह गिर गया था - लेकिन यह सब पलभर में घटित हो गया था। अगले ही पल वहाँ मैदान पूरी तरह खाली हो चुका था।

लालू गरज उठा - मनोहर चटर्जी कौन है? पुरोहित कहाँ भाग गया?

पुरोहित दुबला-पतला आदमी था, गड़बड़ी होते देख मौका ताड़कर वह पहले ही पीछे जाकर छिप गया था। गुरुदेव कुशासन पर बैठकर पाठ कर रहे थे, वे जल्दी से उठे और बरामदे के एक खम्भे के पीछे जाकर छिप गये। लेकिन मोटा शरीर लेकर मनोहर के लिए दौड़भाग करना बेहद मुश्किल था। लालू ने आगे बढ़कर बायें हाथ से उनका एक हाथ कसकर पकड़ लिया, और बोला, चलो बलिवेदी पर चलो।

एक तो वैसे ही उसने बेहद ज़ोर से उनका हाथ जकड़ रखा था, और दूसरे हाथ में था फरसा, डर के मारे चटर्जी की जान सूख गयी। रोते-रोते वे गिड़गिड़ाने लगे, लालू! भाई रे! ज़रा ध्यान से ठहरकर देखा-मैं बकरा नहीं, इन्सान हूँ। मैं रिश्ते में तुम्हारा ताऊ लगता हूँ, भाई, तुम्हारे पिता जी मेरे छोटे भाई के समान है।

मुझे वह सब नहीं पता। मेरे सिर पर खून सवार है - चलो चलो तुम्हारी बलि चढ़ाऊँगा! यह दैवी आदेश है!

चटर्जी ढाड़ें मारकर रोने लगे-नहीं नहीं भाई, यह आदेश नहीं है, कभी नहीं।

लालू बोला-इसका ज्ञान है तुम्हें? और दोगे बकरों की बलि? मुझे फिर बुलाओगो बकरों की बलि देने के लिए। बोलो।

चटर्जी रोते-रोते बोले -कभीं नहीं भईया, अब कभी नहीं, तीन बार कसम खाता हूँ, आज से मेरे घर में बलि नहीं चढ़ाई जायेगी।

पक्का?

बिल्कुल पक्का भाई। अब कभी नहीं। मेरा हाथ छोड़

दो भाई, मुझे ज़रा बाथरूम जाना है।

लालू ने हाथ छोड़ते हुए कहा - ठीक है जाओ, मैं तुम्हें छोड़ देता हूँ। लेकिन पुरोहित कहाँ भाग गया? गुरूदेव? वह कहाँ है? ऐसा कहकर ही उसने फिर से एक हुंकार लगायी और जैसे ही कूदकर बरामदे की ओर बढ़ा, वैसे ही खम्भे के पीछे से दो अलग-अलग स्वरों में रोने की आवाज़ें सुनायी देने लगीं। पतली और मोटी आवाज़ मिलकर वह आवाज़ ऐसी अजीब और हास्यास्पद सुनायी दी कि लालू खुद को नहीं रोक पाया। हा-हा-हा-ठहाका लगाते हुए उसने अचानक फरसा ज़मीन पर पटक दिया और पलक झपकते वहाँ से चम्पत हो गया।

तब किसी को भी यह समझने में देर नहीं लगी कि 'सिर पर ख़ून सवार होना' वगैरह सब झूठ था, उसकी बदमाशी थी। लालू बदमाशी कर अब तक सबको डरा रहा था। जो जहाँ भागे थे, पाँच मिनट के भीतर वापस वहाँ आ धमके। पूजा अब तक शुरू नहीं हो पायी थी, उसमें ख़ासी देर हो चुकी थी, उस भयंकर शोरगुल के बीच चटर्जी बाबू सबके सामने बार-बार शपथ लेते हुए कहने लगे-इस बदमाश छोकरे को अगर कल सुबह ही मैंने उसके बाप के हाथों पचास जूते नहीं लगवाये तो मेरा नाम मनोहर चटर्जी नहीं।

लेकिन उसे जूते नहीं खाने पड़े थे। सुबह उठते ही वह न जाने कहाँ भाग गया था। सात-आठ दिनों तक उसका पता ही नहीं चल सका। सात दिनों बाद एक रोज़ अँधेरे में उसने मनोहर चटर्जी के यहाँ चुपके से जाकर उनके पैर पकड़कर माफ़ी माँग ली थी और इस तरह वह अपने पिता के क्रोध से बच सका था। अब लेकिन जो भी हो, कसम खायी थी इसलिए उस दिन के बाद से चटर्जी बाबू के यहाँ होने वाली पूजा में बलि देने का रिवाज बन्द हो गया। **मूल बँगला से अनुवाद : उत्पल बैनर्जी**

शोक समाचार

1. तर्कशील साथी अजैब सिंह जलालाना के पौत्र सिदक, उम्र साढ़े तीन साल की अचानक बीमार हो जाने से 5 मई 2024 को मृत्यु हो गई।

2. तर्कशील साथी कृष्ण लाल ,पुंडरी जिला कैथल के छोटे भाई बलराज का बीमारी के चलते 31 मई 2024 को देहांत हो गया।

तर्कशील सोसायटी गहरे दु:ख का इजहार करती है एंव परिवारों के प्रति गहरी संवेदना रखती है।

समकाली संपादकी

अंधविश्वास का जाल

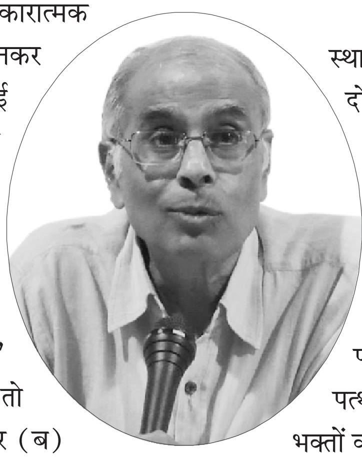
जिस दौर में किसी भी मसले पर छाए धुंध को विज्ञान के सहारे साफ कर लिया जाता है, उसमें अंधविश्वास के चलते एक बच्चे की जान ले लेना हैरान करता है। उत्तर प्रदेश के इटावा जिले में एक तांत्रिक ने दो युवकों के साथ मिल कर एक आठ वर्ष के बच्चे की गला काट कर हत्या कर दी, उसके साथ तंत्र-मंत्र का कर्मकांड किया और शव को गड्ढा खोद कर छिपा दिया। इन लोगों को लगता था कि ऐसा करने से जंगल में कहीं गड़ा खजाना मिल जाएगा। एकबारगी यह अविश्वसनीय लगता है कि वैज्ञानिक चेतना के विकास के बीच भी क्या ऐसी घटनाएं हो सकती हैं! मगर आज भी ऐसे तमाम लोग हैं, जिन्हें लगता है कि जादू-टोना, तंत्र-मंत्र या कर्मकांड के सहारे कुछ मनचाहा हासिल किया जा सकता है। सवाल है कि शिक्षा-दीक्षा और वैज्ञानिक पद्धतियों के व्यापक विकास-विस्तार के बावजूद ऐसी स्थिति क्यों कायम है, जिसमें अंधविश्वास का कारोबार करने वालों और इस संजाल में लोगों को फंसा कर उनसे अपराध तक कराने वालों में कोई हिचक नहीं है। सही है कि तकनीक का विस्तार आज दूरदराज के इलाकों तक हो चुका है और इसके जरिए ज्यादातर लोगों तक कई भ्रामक वैज्ञानिक व्याख्याएं पहुंच पाती हैं। मगर जिस विज्ञान और तकनीक के सहारे अज्ञानता पर पड़े पर्दे को हटाने में मदद मिल सकती है, उसी के सहारे कुछ लोग अंधविश्वास फैलाने वाली सामग्री भी परोसते हैं। आज तकनीकी संजाल का विकास इस तरह हो गया है कि कोई व्यक्ति इंटरनेट पर अपनी रुचि से जो सामग्री देखता-पढ़ता है, उसे उसी से संबंधित चीजें ज्यादा दिखने लगती हैं। इस वजह से भी तकनीक के सहारे विज्ञान को समझने की कोशिश शुरू करने वाला कोई व्यक्ति फिर अंधविश्वास के जाल में उलझ जाता है। संविधान के अनुच्छेद 51 ए के अनुसार वैज्ञानिक सोच को बढ़ावा देना सरकार की जिम्मेदारी है। अपराध घटित होने पर कानूनी कार्रवाई होती है, मगर यह सुनिश्चित करने के लिए ठोस कदम उठाने में सरकारों की भी दिलचस्पी नहीं दिखती कि अंधविश्वास का जाल फैलाने वाली गतिविधियों को रोका जाए और लोगों के बीच वैज्ञानिक चेतना के विकास के लिए जरूरी कदम उठाए जाएं। **(साभार: जनसत्ता 18/5/2024)**

पत्थर का चमत्कार

डॉ. नरेंद्र दाभोलकर

गाँव के उस पार अहाते में ही, आधे मील की दूरी पर एक पीर का छोटा स्थान अपनी जड़ें जमा रहा था-गैबीबाबा का पीर। पीर के आगे चक्की के आकार का बीच में सूराख किया हुआ एक पत्थर रखा था। उसे हरा रंग दिया गया था। उसे महाराष्ट्र के सतारा जिले के पाटण तहसील से लाया गया था।

यह मूर्तिमान 'चमत्कार' ही था। पत्थर को हाथ लगाकर भक्त को प्रश्न पूछना होता था। यदि प्रश्न का उत्तर सकारात्मक होता है, तब तो पत्थर भारी बन जाता। तब उसे उठाना कठिन हो जाता। लेकिन उत्तर नकारात्मक होने पर पत्थर फूल के समान हल्का बनकर ऊपर उठ जाता। प्रश्न कोई भी हो, कठिनाई किसी भी प्रकार की रहे-भला आदमी लापता हुआ हो या भैंस, खरीदी-बिक्री संबंधी सलाह लेनी हो या किसी द्वारा की गई जादूगरी या करनी की बात हो। पहले प्रश्न (जादूगरी की गई है या नहीं?) पर पत्थर भारी हुआ तो आगे का प्रश्न कि (यदि 'अ' ने की है तो पत्थर भारी बन जाओ, नहीं तो हल्का बन जाओ।)पत्थर हल्का बनने पर (ब) के नाम से फिर वही प्रश्न। स्वाभाविक रूप से जितने प्रश्न अधिक पैसे भी उतने ही अधिक। पाँच पैसों से लेकर पाँच सै रूपये रखने तक की बोली लगती थी। जिनके नाम सामने आते (करनी करने वाले), उनके बाद में झगड़ा-झंझट होने की बात तय रहती थी।



आस-पास के इलाके में इसका प्रभाव बढ़ रहा था। बृहस्पतिवार, अमावस और पूर्णिमा के दिन सगुन (देवता की मूर्ति पर फूल आदि लगाकर शकून पूछना/ ईश्वरीय आज्ञा प्राप्त करना), लगाए जाते। इन दिनों भीड़ बढ़ी रहती थी।

दो तारीख की सुबह मैं, प्रा. आर्डे (मूलतः नागराले गाँव के लेकिन सतारा में अध्यापक रहे), ओ.बी.सी. संगठन के नेता नेताजी गुरव, कराड के पत्रकार प्रवीण लांजेकर नागराला गाँव (महाराष्ट्र) में पहुँचे। कराड के छात्रभारती के आठ-दस छात्र भी बड़े उत्साह से आए थे। हमारे किर्लोस्कर बाड़ी पहुँचने से पहले ही नागराला की बस चली गई थी। बाबूराव जाधव पुलिस को लाने कुंडल गए थे। पुलिस थाने के भाऊसाहब बाहर गए थे। दो दिन पहले दी गई अर्जी अब तक हवलदारों ने उन तक नहीं पहुँचाई थी। बाहर बजे पी.एस.आई. आए, उनको समझाने पर दो हवलदारों की हमारे लिए नियुक्ति की गई। हम सभी किराए की साईकिलें गाँव में रखकर गन्ने के खेतों से होते हुए पीर के स्थल तक पुहँचे। सुबह आठ और दस बजे की बस से आनेवाले भक्तों की भीड़ कम थी, फिर भी वहाँ बीस-पच्चीस लोग थे। जिज्ञासा से गाँव से आए कुछ और भी लोग थे।

खेत में चारो दिशाओं से ईंट से बना यह स्थान था। ईंटों पर सफेदी की गई थी। दीवार पर दो-तीन हरे निशान गाड़े हुए थे। अंदर दो कब्रें थीं एक छोटी और दूसरी बड़ी। उन पर मखमली हरी चादर चढ़ाई गई थी। कब्र के चबूतरे पर दस फीट की खुली जगह थी। उसके सामने हरे रंग का, फुट-डेढ़ फुट व्यास का, छह इंच मोटा, बीच में सूराख युक्त तराशा हुआ पत्थर पड़ा था। जैसे ही हम अंदर जाकर पत्थर के पास इकट्ठे हुए, वैसे ही ग्रामीणों तथा भक्तों का जमावड़ा भी अंदर आ गया। बाजू के कमरे में जैतुनबी मुल्ला भी आई। सफेद कपड़े पहनी हुई वह चबूतरे से सटकर बैठ गई। मैंने अपनी टेप शुरू की और कहां, ''बहन जी, हम पत्थर की कीर्ति सुनकर आए हैं। क्या यह सच है कि प्रश्न पूछने पर यदि उत्तर सकारात्मक हो तो पत्थर भारी हो जाता है, नहीं तों फूल जैसा हल्का हो जाता है?''

औरत बोली, ''बिल्कुल सच।''

''मुझे यह नहीं जँचता। पत्थर का वजन ऐसे कभी कम नहीं होता और न ही बढ़ता है, यह धोखा है,'' मैने कहा।

''आप किसी भी पत्थर पर बैठकर खुद इसकी परीक्षा ले सकते हों,'' औरत ने कहा।

हमने थैली से वजन का काँटा निकाला। सभी के सामने पत्थर का वजन किया जो पंद्रह किलो था। मैंने कहा, ''बहन जी, हममें से कोई भी इस पर बैठेगा। मेरे प्रश्न ये हैं- अभी वसंतदादा पाटील राजस्थान के राज्यपाल हैं या नहीं?

मेरी जेब में दस का नोट है या नहीं? दोनों प्रश्नों के उत्तर सकारात्मक हैं। पत्थर भारी होना चाहिए, लेकिन मैं अभी बता दूं कि पत्थर बिलकुल सहज ऊपर उठ जाएगा।''

''तो आप ऐसा करें कि अपना ही आदमी बिठा दीजिए।'' शायद उसे यह बात जँच गई होगी।

उसने एक को आवाज लगाई। पाटील नाम का वह आदमी पत्थर पर पालथी मारकर बैठ गया। झुककर पत्थर को प्रणाम किया। दो मिनट का ध्यान कर औरत बोली, ''गैबी बाबा, तुम्हारे चमत्कार को चुनौती देने के लिए ये लोग आए हैं। यदि सच है तो पत्थर को भारी बनाओ, नहीं तो फूल के समान हल्का बनाओ।''

असल में पाटील उस औरत का आदमी था। उसका पत्थर के चमत्कार पर विश्वास था। लेकिन वातावरण के तनाव का प्रभाव और उसकी सच्चाई के परिणामस्वरूप उसने पत्थर को बड़ी सहजता से ऊपर उठाया। हमारे कार्यकर्ता जाधव तौलने का काँटा लेकर तैयार ही थे। उठाए गए फूल जैसे हल्के पत्थर को काँटा लगाकर वजन किया गया। बिलकुल पंद्रह किलो। हमने जैतुनबी को फटकारा। यह फरेब नहीं तो और क्या है? वह कुछ नहीं बोली। पाँच मिनट ऐसे ही बीत गए। वातावरण में शांति के साथ तनाव भी था। गर्दन नीचे कर बैठी औरत ने गर्दन उठाकर पत्थर को घुमाया! बड़ी उम्मीद से पत्थर की ओर देखा और भूत सवार होने जैसी चिल्लाई, ''गैबी बाबा, तुम्हें झूठा ठहराने के लिए ये सतारा से आए हैं। यदि तुम सच हो तो भारी बन जाओ, झूठ हो तो हल्के बनो।''

फिर एक पाटील ने पत्थर को बड़ी सहजता से ऊपर उठाया।

पत्थर यदि दोनों बार ऊपर न भी उठता, तो भी हमारा नुक्सान नहीं होने वाला था। लेकिन अब काम ओर भी आसान बना था। मैंने कहा, ''बहन जी, स्वयं तुम्हारा गैबी बाबा झूठ होने की बात कर रहा है और यदि नहीं बताता तो भी यह झूठ ही था, क्योंकि तुमने यह देखा है कि फूलों के समान हल्का लगने वाले पत्थर का वजन 15 किलो ही रहा है। तुम्हारा पीर और लोगों की भक्ति से हमारा झगड़ा नहीं है। लेकिन तुम्हारे इस पाखंड से जरूर है। आज से तुम्हें इस प्रकार के पाखंड को बंद करना होगा, नहीं तों हम बात को आगे तक ले जाएँगे।''

औरत ने गर्दन हिलाकर हामी भरी।

हमने कागज पर उसका इकरारे जुर्म लिखकर दर्ज किया। इस अंधेरगर्दी को रोकने का उससे लिखित आश्वासन लिया।

लिखते समय औरत ने परेशान होकर पत्थर को दूसरी ओर धकेल दिया, ''इसे भी ले जाइए, नहीं चाहिए ये यहाँ।'' परेशान होकर उसने कहा।

जायदाद हस्तांतरण का प्रश्न आने पर अब तक शांत रहे हवलदार आगे आए। लेकिन पत्थर को जबर्दस्ती उठाने में श्रद्धा की बात आड़े आने की संभावना थी। पुलिस न पूछा, ''बहन जी, आप अपनी मर्जी से पत्थर दे रही हो? आपकी कोई शिकायत नहीं है?'' उसने हाँ में गर्दन हिलाई।

पुलिस पंचनामे पर औरत की सहमति के प्रमाण स्वरूप उसके अँगूठे का निशान लिया गया। उपस्थित गाँववालों के साथ पुलिस के भी हस्ताक्षर लिए गए।

अपने साथ पत्थर लेकर हम वहाँ से निकले। कुछ लोगों के मन में विचार आया कि वापसी के रास्ते पर एक कुआँ है। साइकिल से इस बोझ को ढोने से अच्छा है कि इसे कुएँ में फेक दें। लेकिन आर्डे सर ने ऐसा करने से मना कर दिया। उन्होंने कहा, ''कल विपरीत अफवाएँ फैलाई जाएँगी कि लंगर इतना भारी होता गया कि इन लोगों को उसे साथ ले जाना असंभव हो गया। इसलिए इन्हें मजबूरन कुएँ में फेंकना पड़ा।''

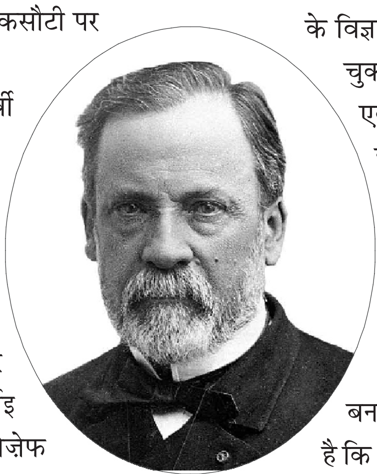
हम नागरले में वापस आए। गाँव वाले बड़े प्रभावित नजर आए। पाठशाला मे सभा हुई। कक्षा 8वीं, 9वीं तथा 10वीं के छात्र-छात्राओं के साथ गाँव वाले भारी संख्या में पाठशाला के आँगन में इकट्ठे हुए। टेबल पर पत्थर रखा गया। प्रा. आर्डे के साथ मेरा भी भाषण हुआ। छात्रों का उत्साह देखने लायक था। पत्थर से शुरू हुई भाषण की गाड़ी भूत-सवार होने की खरी-खोटी बातों की चर्चा को चक्कर लगाकर समाप्त हुई। रामानंद नगर के नजदीक के गाँव से आए कुछ छात्र कहने लगे, ''आप से हमें बहुत कुछ सुनना है, सीखना है। आप एक दिन गाँव में ठहरने के लिए आ जाएइ-हम अँधविश्वास निर्मूलन के लिए उत्सुक है।''

(स्रोतः पुस्तक ''अंधविश्वास उन्मूलन'' : आचार (दूसरा भाग), संपादक : डॉ सुनील कुमार लवटे, अनुवादकः प्रकाश कांबले)

लुई पास्चर

फिलिप केन

कुत्ता काट ले तों गांवों में लुहार ही तब डाक्टर का काम कर देता। और अगर यह कुत्ता पागल हो तो उसका इलाज था–घाव में से एक लाल गरमागरम सींख गुजार दो। कोई ही मरीज होता जो इलाज से भी और मर्ज़ से भी, दोनों से, इस तरह निजात पा सकता। लुई पास्चर ने एक ऐसा केस अपनी आँखों देखा भी था, तब वह नौ साल का था। और पचास साल बाद उसने पागल कुत्ते के काटने का एक खतरे से खाली और आसान इलाज निकालकर उसे कसौटी पर उतार दिखाया।



लुई पास्चर का जन्म फ्रांस के पूर्वी हिस्से में एक गाँव में 1822 की सर्दियों में हुआ था। पिता फ्रांस की फौज में एक सिपाही रह चुका था, और नेपोलियन के पतन के पश्चात्, उसने दोल में चमड़ा साफ करने की एक दुकान खोल ली थी। लुई के जन्म के कुछ ही दिन बाद परिवार दोल छोड़कर कुछ दूर अंगूरों की एक बस्ती के बीच आर्बोइ मे आ बसा। फौज का पुराना सार्जेण्ट जिएं जोज़ेफ पास्चर टैनरी में भी मशगूल रहता, और, बच्चों की परवरिश से भी। किसी स्कूल मे उसने शिक्षा नहीं पाई थी। जो कुछ सीखा था वह अपने ही पैरों पर–किन्तु पढ़ाई–लिखाई और बुद्धि के कामों के लिए उसके दिल में इज्जत थी। गाँव में भी उसके साथीयों मे एक गाँव का डाक्टर था, और एक ऐतिहासिक बूस्सों डि मोरे था। जोज़ेफ पास्चर के मन में अपने पुत्र के लिए बड़ी महत्त्वकांक्षाएं थी। उसकी इच्छा थी कि उसका पुत्र बड़ा होकर प्रान्त के हायर सेकेण्डरी स्कूल में एक टीचर लग जाए।

पिता से और डि मोरे से लुई ने देशभक्ति की भावना ग्रहण की और फ्रांस के प्रति प्रेम, और फ्रांस की महान शखसीयतों के प्रति आदर–भाव जिसका प्रभाव उसके हृदय में, आजीवन, स्थायी रूप से बना रहा।

लुई के बचपन में कोई ऐसे आसार नहीं थे जिनसे पता चल सकता है कि बड़ा होकर विज्ञान के अनुसन्धान में प्रवृत्त होगा। पन्द्रह साल की उम्र में उसकी रुचि पोर्ट्रेट बनाने में थी। पेटिंग में उसकी सफलता अद्‌भुत थी, और वह सचमुच एक विख्यात चित्रकार होता भी यदि उसकी रूचि विज्ञान की ओर न हो गई होती। उसेक कलाकार–जीवन की ऐसी कुछ स्मृतियां बच भी आई है और आज पेरिस में पास्चर इन्सटीट्यूट में लटक रही है।

स्थानीय सेकेण्डरी स्कूल के हेडमास्टर ने देखा कि इस कल्पनाशील, उत्साही किन्तु विचारशील, विद्यार्थी में एक अच्छा अध्यापक बनने के लक्षण है।'एॅकोल–नॉर्मलि–सुपूरियो' के विज्ञान–विभाग में यद्यपि लुई को दाखिला मिल चुका था। पेरिस में अध्यापकों के प्रशिक्षणार्थ एक संस्था थी यह। एक साल तक वह खुद ही यहां दाखिल नहीं हुआ क्योंकि उसका विचार था कि वह अभी पूरी तरह से इसके लिए तैयार नहीं। तब तक उसकी रुचि भई परिष्कृत हो चुकी थी। गणित, भौतिकी और रसायन में उसे विशेष रुचि थी।

पास्चर एक प्रतिष्ठित अध्यापक बनना चाहता था। उसके पत्रों में स्पष्ट अंकित है कि भौतिक तथा रसायन अध्यापक की क्रियात्मक परीक्षाओं में सफलता मिलने पर कितना गर्व एवं उल्लास अनुभव हुआ था उसे। किन्तु प्रमाणपत्र मिलते ही वह अध्यापन की ओर न जाकर अनुसन्धान की ओर मुड़ गया।

एॅकोल में विद्यार्थी रहते हुए ही पास्चर ने स्फटिकों के सम्बन्ध में कुछ अनुसन्धान शुरू कर दिया था। उन्हीं दिनों उसने ब्रोमीन के आविष्कर्ता एॅन्तॉयने येरोम बलार के रसायन पर कुछ व्याख्यान सुने भी थे।

बेंजामिन फ्रैंकलिन की तरह बलार का भी विश्वास था कि वैज्ञानिक अनुसन्धान का कार्य घर में ही छोटी–मोटी प्रयोगशाला खड़ी करके भी चलाया जा सकता है। सो, स्कूल में ही इसी तरह की झोंपड़ी–सी उसने बना भी रखी थी। बलार पास्चर की मौलिक गवेषणाओं से और अन्तर्दृष्टि से पहले ही बहुत प्रभावित हो चुका था। उसने उसे अपने असिस्टेंट के तौर पर बुला लिया। इस अवसर पर पास्चर को तुरन्त लाभ यह हुआ कि टार्टरिक एॅसिड के स्फटिकों की सूक्ष्म परीक्षा उसकी वैसी ही बदस्तूर चलती रही। बलार ने उसके निष्कर्षों को फ्रांस के प्रसिद्ध भौतिकी विशारद जिए बैप्टिस्टे बिओ के

पास भेज दिया और बिओ ने इन अनुसन्धआनों की ओर फ्रेंच ऍकेडमी ऑफ साइन्स का ध्यान आकर्षित किया।

1848 में, प्रोफैसर बलार तथा प्रोफैसर बियो की उठाई आपत्तियों एवं आक्षेपों के बावजूद, और ऍकेडमी के अन्य सदस्यों का विचार भी कुछ भिन्न न था, शिक्षा मन्त्रालय ने पास्चर को दिजों के एक सेकेण्डरी स्कूल मे प्रारंभिक भौतिकी पढ़ाने पर नियुक्त कर दिया। पास्चर के मित्रों तथा अभिभावकों की कोशिशें अब भी जारी रहीं। वे अब भी मन्त्रालय पर दबाव डालते रहे जिसका नतीजा यह हुआ कि एक ही साल बाद लुई को स्ट्रासबर्ग विश्वविद्यालय में रसायन की प्रोसेसरी मिल गई।

यहां आने के कुछ ही सप्ताह पश्चात, इस गम्भीर प्रकृति, चिन्तनशील वैज्ञानिक ने विश्वविद्यालय के रैक्टर से कहा कि वह उसे अपनी लड़की का हाथ शादी में दे दे। पत्र इस प्रकार था :

''मेरे पास कुछ भी सम्पत्ति नहीं है। मेरे पास जो थोड़े-बहुत साधन है, वे हैं-अच्छा स्वास्थ्य, कुछ साहस भी, और विश्वविद्यालय में मेरी यह नौकरी। भविष्य के बारे में मैं यही कर सकता हूँ कि, जब तक मेरी रूचियों मे ंकुछ मौलिक परिवर्तन ही नहीं आ जाता, मेरा ध्येय जीवन को रसायन-सम्बन्धी अनुस्न्धान मे खपा देने का ही है। विज्ञान के क्षेत्र में अनुसन्धान की बदौलत जब कुछ प्रतिष्ठा मुझे मिल जाएगी, मेरा विचार पेरिस लौट जाने का है।''

''मेरे पिता खुद स्ट्रासबर्ग आकर विवाह का यह प्रस्ताव आपके सम्मुख रखेंगे।''

लुई पास्चर और मेरी लौरेंत 29 मई, 1849 को विवाह में बंध गए। पास्चर 26 वर्ष का था और मेरी 22 की। मेरी एक आदर्श पत्नी थी। एमिल रूक्स, जो 1876 में पास्चर का असिस्टेंट था और 1904 में पास्चर इन्स्टीट्यूट का डायरेक्टर मेरी के बारे में लिखता है:

''विवाहित जीवन के पहले दिन से मेरी को पता था कि उसकी शादी किसके साथ हुई है। जीवन की कठोरताओं से पति को बचाए रखने के लिए उसने सब कुछ किया-घर की चिन्ताएं अपने ऊपर लेते हुए कि अनुसन्धान-कार्य में पास्चर के मन को पूर्ण स्वतन्त्रता मिली रहे। शाम को उसका यह एक दैनिक कर्त्तव्य ही हो गया था कि जो कुछ पास्चर बोलता चले वह लिखती जाए। स्फटिकों की रचनाओं मे और विषाणुओं के तनूकरण में भी वह सच्ची दिलचस्पी दिखाती। उसमें यह बुद्धि ही जागरित हो चुकी थी कि विचारों को किसी और के सम्मुख अभिव्यक्त करके उनमें स्पष्टता आ जाती है, और यह कि पुराने परीक्षणों के उपवर्णन में जो प्रेरणा नये परीक्षणों को संयोजित करने की मिलती है वह किसी भी ओर प्रकार से असम्भव है। परीक्षणों में प्राय: एक श्रंखला-सम्बन्ध हुआ करता है। मेरी पास्चर की एक अनुपम साथिन ही नही, एक अनुपम सहयोगिनी थी।''

और फिर पास्चर और मेरी के जावन में व्यक्तिगत दुख भी कुछ कम नही आए। उनकी पहली सन्तान, जिएने, एक लड़की थी जो नौ बरस की होकर गुजर गई। 1865 में दो साल की नन्ही कैमिली भी गुजर गई। और 1866 में 12 साल के सीसिल को टाइफॉयड ले गया। 1871 में जर्मनों के हाथों फ्रांसीसी फौज की हार के दौरान में, खबर आई पास्चर का बीस साल का जवान बेटा बेप्टिस्टे लापता है। लुई ने सब काम-काज छोड़ दिए और और लौट रहे थके-हारे सिपाहियों की लम्बी कतारों को ही सारा दिन देखते गुजार देता।

और फिर दिल तोड़ देने वाली एक खबर यह आई कि सार्जेण्ट पास्चर की बैटेलियन के 1200 आदमियों में अब केवल 300 ही बच रहे हैं। लुई और मेरी के लिए यह एक अच्छी ख़बर ही थी कि उनका इकलौता बेटा-घायल लेकिन जिन्दा-घर लौट आया और तीमारपुरसी करके उन्होंने उसे भला-चंगा भी कर लिया। लुई पास्चर जर्मनों का यह अपराध जीवन-भर कभी क्षमा नहीं कर सका। सालों बाद जब जर्मनी की सरकार ने एक मेडल उसे उसके वैज्ञानिक अनुसन्धानों के सम्मान में देना चाहा तो उसने लेने से इन्कार कर दिया।

अब हम जरा देखें कि पास्चर ने क्या कुछ सम्भव कर दिखाया। पास्चर के पहले पहल परीक्षण स्फटिकों के सम्बन्ध में थे। भौतिकी के प्रसिद्ध प्रोफैसर बिओ ने देखा था कि क्वार्ट्ज के स्फटिक में से जब 'ध्रुवित' प्रकाश को गुजारा जाता है उसका 'तल' घूम जाता है-अर्थात् प्रकाश की दिशा परिवर्तित हो जाती है। अन्य वैज्ञानिकों की भी साक्षी थी कि ध्रुवित प्रकाश को चक्कर देने के लिए पहले कुछ स्फटिकों को विलीन कर देना ज़रूरी है।

उदाहरण के तौर पर यदि इस ध्रुवित प्रकाश को पानी में कुछ शक्कर घोलकर उसमें से गुजारा जाए, ध्रुवीकरण के तल में शक्कर के शरबत में से गुजरते हुए कुछ चक्कर आने लगेंगे। उधर, एक जर्मन वैज्ञानिक आइलहार्ड्ट मितशेरलिख टार्टरिक एसिड से सम्बन्ध में किसी प्रश्न से जूझा हुआ था।

(शराब के कारोबार में टार्टरिक की उत्पत्ति होती है।) उसकी सूचना थी कि टार्टरिक एसिड दो तरह के होते हैं-एक तो सच्चा टार्टरिक एसिड और दूसरा पैराटार्टरिक एसिड। सच्चे एसिड से तो ध्रुवित प्रकाश में यह चक्कर आता है, किन्तु पैराटार्टरिक का उस पर कुछ भी असर नहीं होता। और सब मामलों में दोनों में कुछ भी भेद नहीं है।

पास्चर अभी उम्र में बहुत छोटा था, किन्तु यह अजीब-सी स्थिति उसके दिमाग को काबू कर गई। विश्वास ही ना आता उसे। कुछ न कुछ स्पष्ट भेद होना ही चाहिए। और अब वह इसी पर लग गया कि वह भेद है क्या। इतने साल स्फटिकों पर काम किया था, आज उसी की परीक्षा का दिन जैसे आ गया था। टार्टरिक एसिड के स्फटिकों की सूक्ष्म रूप रेखाएं गौर से देखीं। मितशेरलिख की किस्म का पैराटार्टरिक एसिड भी तैयार किया, और उसके स्फटिकों की छानबीन भी उसने की।

पैराटार्टरिक में उसने देखा कि उसके स्फटिकों की आकृति दो प्रकार की है- कुछ वाममुखी है, तो कुछ दक्षिणमुखी। उसका चेहरा खिल उठा। पैराटार्टरिक एसिड वस्तुत: दो किस्म के टार्ट्रेट है-वाममुखी तथा दक्षिणमुखी दो किस्मों का एक सममिश्रण सा! यह एक बिल्कुल ही अद्‌भुत और सर्वथा नूतन खोज थी।

पास्चर की स्फटिक-सम्बन्धी खोजों का यह, अन्त नहीं, आरम्भ था। स्फटिकों के अध्ययन को समाप्त करने से पूर्व उसने 'पार्थिव जीवन' के सम्बन्ध में एक स्थापना भी प्रस्तुत कर दी। उसका विचार था कि ये दक्षिणमुखी और वाममुखी स्फटिक सदा सजीव वस्तुओं की अन्त: क्रिया द्वारा ही उत्पन्न हुआ करते हैं। दोनों को एक नाम 'अ-समरूप' (ए-सिमिट्रिकल) दे सकते हैं। पास्चर को विश्वास था कि रासायनिक प्रक्रियाओं में ये अ-समरूप शक्तियां प्रवेश पा सकें तो प्रयोगशाला में स्वयं जीवन का निर्माण भी किया जा सकता है। प्रयोगशाला में जीवन को सिद्ध कर दिखाने के इस स्वप्न में तो पास्चर को सफलता नहीं मिली, किन्तु एक ओर नई समस्या-खमीर लगना-के समाधान के लिए, अलबत्ता, उसे कुछ प्रशिक्षण इस प्रकार आप से आप मिल गया।

'फॅर्मेण्टेशन' अथवा 'खमीर लग जाना' एक वैज्ञानिक परिभाषा है जिसका प्रयोग कुछ द्रव्यों में प्रत्यक्षीकृत परिवर्तनों के वर्णन में किया जाता है। कभी तो हम चाहते हैं कि चीज़ को खमीर लग जाए, और कभी नहीं चाहते। अंगूर सड़ते हैं, उन्हें खमीरी लग जाती है, और तब जाकर शराब बनती है; और यह शराब ही अब सिरका भी बन सकती हैं यदि यह और सड़कर एसेटिक एसिड बन जाए। दूध खट्टा पड़ जाता है जब उसकी शक्कर खमीरी होकर दुग्धाम्ल में परिणत हो जाती है। मांस और अण्डों के लिए खमीर हानिप्रद है।

शराब फ्रान्स में एक बड़ा ही भारी उद्योग थी; और अब, जब अंगूर मुफ्त में ही सड़ने लग गए, स्वभावत: कारोबार के लिए एक समस्या उठ खड़ी होनी थी। किन्तु अभी तक किसी को यह मालूम नहीं था कि चीज़ों में यह खमीर आखिर लगता किस तरह है। और प्रकृति को ही यदि स्वतन्त्र छोड़ दिया जाए तो उसका नतीजा यह भी हो सकता है कि शराब या तो खट्टी हो जाए या फिर बने ही नहीं। पास्चर ने शराब के कारोबार का सूक्ष्म अध्ययन किया जिसका परिणाम हुआ खमीर के कीटोत्पादन-सिद्धान्त का आविष्कार, जिसे पास्चर ने लिली की 'सोसाइटी डि साइन्सेज़' के सम्मुख रखा। उसने अपनी यह धारणा सूत्रबद्ध कर दी कि सूक्ष्म तथा व्यापक परीक्षणों द्वारा स्पष्ट है कि प्रकृति में द्रव्यमात्र में कोई परिवर्तन बिना इन छोटे-छोटे जीवाणुओं के असंभव है, भले ही हम इन्हें सूक्ष्मदर्शी यन्त्र की सहायता के बिना देख भी न सकें। पास्चर ने यह भी प्रत्यक्ष दिखा दिया कि ताप के द्वारा इन क्षुद्रजन्तुओं को नियन्त्रित भी किया जा सकता है। पास्चर के परीक्षणों और अनुसंधानों ने फ्रांस को शराब-उद्योग को एक वैज्ञानिक आधार दे दिया। और इसी अध्ययन का एक ओर परिणाम भी विश्व-व्यापक सिद्ध हुआ। पास्चराइजेशन की विधि द्वारा दूध वगैरह की सुरक्षा, ताकि न तो वह फटने पाए और न ही उसमें बीमारी के कोई कीटाणु ही रह सकें या जा सकें।

कुछ साल बाद, अब फ्रांस का रेशम-उद्योग बरबाद होने की नौबत पर आ गया क्योंकि रेशम के कीड़ों को कुछ बीमारी लग गई थी। मुश्किल का पता करने के लिए पास्चर को बुलाया गया। यहां भी समस्या के हर पहलू का उसने अध्ययन किया। रेशम के कीड़ों को पैदा करने में वह सिद्धहस्त हो गया कि किस प्रकार रेशम के स्वस्थ कीटाणुओं को पृथक् करके कारोबार को सुरक्षित किया जा सकता है।

लुई पास्चर की सफलताओं में चिन्तन से उद्‌भुत कुछ निरन्तरितता-सी, कुछ क्रम-सा, कुछ अपरिहेयता-सी है। एक अनुसंधान का अर्थ का अर्थ था-एक और अनुसन्धान की आवश्यम्भाविता। स्फटिक के अध्ययन ने उसे जीवन के निगूढ़ रहस्यों की खोज के लिए प्रेरित **... शेष पृष्ठ 14 पर**

कहानी

भैरव के थान का सच



जय प्रकाश वाल्मीकि

बद्री प्रसाद रोजाना की तरह नहा-धोकर पूजा के लिए घर से बाहर चबुतरे पर आये तो चबुतरे पर थोड़ा ऊँचा कर के बनाये भैरव के थान की हालत देखकर चकरा गये। थान पर आज वह दीपक जिसे तेल डाल कर प्रज्ज्वलित करते थे और मार्बल की यह चौकोर पट्टी जिस पर गोबर के कण्ड़ों की आंच रख कर भैरव बाबा को भोग लगाया करते थे, वे गायब थे। लोहे का त्रिशूल जो थान पर गड़ा रहता था, वह भी ढीला था, उसे भी किसी ने उखाड़ने की कोशिश की थी।

बद्री ने जब यह नजारा देखा तों पत्नी को आवाज़ लगाई ''अरे, सुनो! जरा बाहर आना।'' वह बाहर आई तो बद्री प्रसाद ने उसे भैरव जी के थान को दिखाते हुए कहा- देखो! पूजा का सामान कोई उठा कर ले गया। त्रिशूल भी उखाड़ने की कोशिश की। उनकी पत्नी मीरा भी आश्चर्य से देखती रह गई। कभी किसी ने कुछ नहीं छेड़ा, आज कौन उठा कर ले गया समान। दोनों पति पत्नी सोचते विचारते अंदर आ गये। कल रविवार भी है। यह दिन भैरव जी का दिन होता है। रविवार को भैरव बाबा के भक्त अपने आराध्य की विशेष पूजा-अर्चना करते हैं। भैरव बाबा बद्री प्रसाद के कुल देवता है। उनके पुरखे रविवार के दिन थान को धोते, मूर्ति को जल-भिषेक कर सिन्दूर का चोला चढ़ा कर माला पहनाते। बताशे में लोंग का जोड़ा लगा कर लड्डू-पान का भोग लगाते। कुछ विशेष होता तो धार (शराब) कलेजी का भी भोग लगता था। उसी परंपरा को बद्री प्रसाद भी निभाता आ रहा है।

खैर, बद्री प्रसाद को काम धन्धे पर जाने की जल्दी थी। वो अपनी पत्नी मीरा से बोला- ''ऐसा करो, थोड़ी-सी सिमेन्ट मंगा लेना शाम को आकर त्रिशूल को मजबूती से रोप दूंगा और दीपक भी लेती आना। मैं चोंकोर छोटा कातला लेता आऊंगा। रास्ते में मार्बल की दुकान से। फिर वो उठा खड़ा हुआ और वापस चबुतरे पर जाते हुए बोला-दो अगरबत्ती लेती आओ, आज वो ही लगा देते हैं। फिर वह थान के पास जाकर बैठ गया। बनवारी उधर से जा रहा था। बद्री को बैठा देखकर रुक गया। दोनों में दुआ-सलाम हुई। बातों ही बातों में बद्री प्रसाद ने बनवारी को बताया भैरव बावा के थान का दीपक, जिस मार्बल के चोकोर कातले (पट्टी) पर भोग लगाते थे वो कई रात में या सुबह जल्दी उठा ले गया। थान पर लगे त्रिशूल को उखाड़ने की भी कोशिश की।''

बनवारी पूरी बात सुन कर गंभीर-सा हो गया। मीरा अगरबत्ती और माचिस की डिबिया ले आई और अपने पति बद्री प्रसाद को देने लगी।

बनवारी अपनी गंभीरता से बाहर निकलते हुए बोला- ''बद्री जी! मेरा कहा मानो अभी यहाँ पूजा मत करो।''

बद्री प्रसादि - ''क्यों?''

बद्री प्रसाद की पत्नी मीरा भी बनवारी की बात सुन कर जगह की जगह खड़ी की खड़ी रह गई।

बनवारी उन दोनों को समझाते हुए बोला- ''आपका कोई जलता-बलता भैरव जी को मंत्रों से वश में कर उनकी जगह किसी गंदी शक्ति को बिठा कर चला गया हो तो? ...भैरव जी के भरोसे वह पूजी गयी तो अनर्थ हो जाएगा।''

यह सुनकर पति-पत्नी एक-दूसरे को आश्चर्य से देखने लगे। बद्री प्रसाद सहज होकर बोला - ''छोड़ो यार! यह किसी की शरारत भी तो हो सकती है।''

हमारा पारिवारिक तथा सामाजिक परिवेश ही ऐसा है कि ऐसी बातें सुन कर पढ़ी-लिखी महिलाओं का सिर भी घूम जाए। मीरा तो साधारण अशिक्षिक गृहणी थी। ऐसी बातों के लिए ऐसी महिलाओं का मन उर्वराभूमि जैसा होता है। उनके मनों में ऐसी बातों का सफलता से बीज रोपण हो जाता है और वे अंकुरित होकर शीघ्र पल्लवित भी हो जाती हैं।

बनवारी कुछ कहे इससे पहले ही मीरा बोल उठी- ''रहने दो, मत लगाओं अगरबत्ती। बनवारी लाल जी सही कह रहे हैं।'' बद्री प्रसाद कुछ समझ नहीं पाये और दुविधा भरे मन से उठ गये। मीरा ने उसे काम पर भेज दिया कि शाम को तसल्ली से सोचेगें।

बद्री प्रसाद जब शाम को घर आया तो उसकी पत्नी मीरा पहले ही तैयार बैठी थी। वह बोली- ''सुनो जी! हाथ-मुँह धोकर चाय पी लिजिए। बाबा चोरंगी लाल के चलते हैं। वहां बुझा (जानकारी) निकलवा आते हैं।''

बद्री प्रसाद बोला, - ''कौन है, बाबा चोरंगी लाल?''

मीरा ने बताया - ''पड़ोस वाली रामवती ने बताया

कि वे पास ही कच्ची बस्ती में रहते हैं, सारी बातें सही, सही बताते हैं।'' फिर रुक कर वह आगे कहने लगी- ''आज शनिवार है। वहां आज के दिन बैठक और पूजा होती है।''

बद्री प्रसाद बोला - ''छोड़ो, सयाने-भोपो के चक्कर। कोई शरारत भी तो कर सकता है?''

मीरा झुंझलाई- ''तुम हर बात को ऐसे ही उड़ा देते हो, गहराई से समझते ही नहीं हो!'' वह आगे कहने लगी- ''रामवती ने भी बताया था कि उसके पितरों को भी मंत्र शक्ति से किसी ने बांध रखा था। उपाय करने पर अब घर में शान्ति है।''

अब बद्री प्रसाद भी सोच में पड़ गया।

मीरा ने उसे धैर्य से समझाते हुए कहा- ''बिरजू का कहीं काम-धन्धा नहीं जमता, मैं खुद हारी बिमारी रहती हूँ। थोड़े से आप चल फिर रहे हैं। कोई नया संकट आ गया तो?''

अब बद्री प्रसाद क्या करता बेचारा। चाय पीकर पत्नी के साथ चल पड़ा। चोरंगी बाबा के यहां पहुंच कर देखा। सच में लोग जमा थे। उससे स्त्रियों की संख्या ज्यादा थी। बाबा लोगों के दुख-दर्द सुन रहे थे और उपाय बतला रहे थे। उनके साथ एक दूसरा आदमी भी बैठा था। जोत में तेल डाल रहा था और माला प्रसाद ले-लेकर रख रहा था। मीरा ने भी उसे माला प्रसाद के साथ आखा (अनाज के दाने) सौंप दिये और दोनों पति-पत्नी बैठ गये।

जब उनका नंबर आया तो वे बाबा के निकट आकर बैठ गये।

मीरा ने अपनी समस्या बताई- ''बाबा! हमारे भैरव बाबा के थान पर से कोई पूजा का सामान उठा ले गया। थान पर गड़े त्रिशूल को भी उखाड़ने की कोशिश की। पर उसे वह ले जा नहीं पाया।''

बाबा गंभीर हो गये।

मीरा आगे बताने लगी- ''बाबा मुझे तो यह शक है कि कोई हम पर जलता-बलता आदमी भैरव बाबा की जगह कोई गंदी शक्ति को थान पर विराजमान करा गया है।''

बाबा चोरंगी ओर गंभीर से हो गये। उन्होंने आखा मुट्ठी में लिये। फिर उन्हें मुँह के पास ले जाकर कुछ मंत्र-सा बुदबुदाया और उछाल कर आखाओं को हथेली पर केप किया और जो आखा वापस हाथ में आये उसे बाबा ने अपने सहयोगी को सौंप दिया। उसने उन्हें अलग-अलग कर देखकर बोला - ''अधुरे आये है।''

बाब ने हुंकार भरी। आखों को ध्यान की मुन्द्रा में बन्द किया और हथेलियों को मलते हुए बोला- ''बाई! तेरा शक सही है। भैरव जी ही नहीं, तुम्हारे सभी देवी-देवता, पितरों आदि सभी को ले गया और गलत चीज बिठा गया।''

बद्री प्रसाद ने पूछा - ''बाबा यह किसका काम है?''

बाबा - ''टाइम आने दे।''

बद्री प्रसाद - ''ठीक है, अब क्या करे?''

बाबा - ''थान शुद्ध होगा, घर शुद्ध होगा। यहां पूजा होगी।'' बाबा का सहयोगी बीच में बोला- ''मैं समझा दूँगा, आप इधर आकर बैठ जाओ।''

बद्री और उसकी पत्नी आज्ञाकारी बन कुछ दूरी पर बैठे। जब भीड़ छट गई। चोरंगी बाबा आसन से उठ गये तो उनका सहयोगी बद्री को इशारे से पास बुला कर सामान की सूची थमा कर बोला - ''मंगलवार को यहां पूजा करनी है। यह सामान कल शाम तक दे जाना और परसो सुबह आ जाना।''

बद्री ने सूची पढ़ी और सभी सामान आसानी से मिल जाने वाला था। पर काली मुर्गी का जोड़ा सूची में देखकर वह सोच में पड़ गया। वह कहां तलाश करेगा काली मुर्गी का जोड़ा? बाबा के सहयोगी को उसने यह समस्या बताई तो वह बोला - ''काम करवाना है तो लाना तो पड़ेगा ही।''

मीरा बोली - महाराज हम क्या जाने पूजा पाठ के सामानों के बारे में, आप ही कहीं से इन्तजाम करवा दो।''

वह बोला - ''कोशिश करूंगा पैसे दे जाओ।''

''कितना।''

''यही कोई तीन हजार''

मीरा बोली - ''अभी तो पैसे लाए नहीं कल तक दे जाएंगे।''

चोरंगी बाबा का सहयोगी बोला- ''सुबह 10 बजे तक दे दोगे तो इन्तजाम हो जाएगा। यह चीजे आसानी से नहीं मिलती।''

बद्री ने पूछा - ''ठीक है महाराज! मंगलवार को पूजा के बाद तो हम घर पर भैरव जी की पूजा कर सकेंगे न?''

वह बोला - ''नहीं, यहां के बाद घर का शुद्धीकरन होगा। हवन होगा। भैरव जी की फिर से स्थापना करके उन्हें बलि चढ़ानी पड़ेगी।''

बड़ी सोच में पड़ गया। घर पर भी पंद्रह-सोलह

हज़ार का खर्च होगा ही। ओखली में सिर दे दिया तो अब धमाके से क्या डरना। दोनों पति-पत्नी कल समान के पैसे देने की बात कह कर घर आ गये। मीरा झंल्ला रही थी- ''दुश्मनों का नाश हो जाये, हमारे पीछे पड़े हुए हैं।''

-2-

रविवार का दिन, सुबह का समय। बाहर कुछ आहट पाकर बद्री जैसे ही बाहर निकला एक अधेड़-सा आदमी मैले-कुचले कपड़े पहने हुए बढ़ी हुई काली-सफेद दाढ़ी। सिर के घने बाल मैल से एक-दूसरे से चिपके हुए। वह भैरव जी के थान के त्रिशूल को उखाड़ने के लिए हूं-हूं की आवाज करता दोनों हाथों से जोर लगा रहा था।

बद्री ने उसे ललकारा - तो उसकी एकाग्रता भंग हो गई। उसने बद्री को आंखे निकाल कर देखा।

बद्री ने फिर धमकाया - ''साले, भाग यहां से।''

वह थान मे उतरा और सड़क पर पड़ा पत्थर उठाया। बद्री ने जब यह देखा तो फुर्ती से अंदर आकर घर का दरवाज़ा बन्द कर लिया। क्षण में ही पत्थर घर के दरवाजे पर आ कर लगा। दरवाजे पर पत्थर की आवाज सुन कर बद्री की पत्नी मीरा कमरे से भाग कर चोक में आ गई और पूछने लगी- ''क्य हुआ? बोलो न क्या हुआ?''

बाहर कुछ लोग और बस्ती के बच्चे आ गये। वे चिल्ला रहे थे -''पागल! पागल!''

अपने को भीड़ से घिरा देखकर वह पागल आगे बढ़ गया और इस बार भी त्रिशूल उखाड़ने में नाकाम रहा।

बद्री और उसकी पत्नी बाहर आ गये।

मीरा बोली - ''अरे, यह तो वही पागल है जो कई दिन से पास के बस स्टाप पर घूमता रहता है।'' अब दोनों पति-पत्नी समझ गये कि कल मन्दिर से सामान उठाकर ले जाने वाला काम किसी जलते-बलते दुश्मन का काम नहीं, इसी पागल की करतूत थी। लोगों ने भी बताया कि यह बस्ती में कल से ऐसी ही हरकत कर रहा है। खैर, दोनों पति-पत्नी ने मन ही मन राहत की सांस ली कि चलो अच्छा हुआ। पागल उनके सामने आ गया और भैरव जी के थान का सच वे जान गये। चोरी तो दाढ़ी वाले ने की थी और वे मूंछ वाले को पकड़ने चले थे और इसके लिए दोपहर तक वे चोरंगी बाबा के यहां पूजा के सामान के पैसे देकर आ जाते। अब वे ठगने से बच गये थे।

85598 41747

पृष्ठ 11 का शेष किया और जीवन के अध्ययन द्वारा वह 'खमीर लगने' की समस्या के समाधान की ओर मुड़ा। यहां वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि फॅर्मेण्टेशन का मूल होते हैं छोटे-छोटे जीवाणु (माइक्रोब्ज)। इस अनुसंधान का परिणाम यह हुआ कि परम्परावादियों से उसकी झड़प हो गई। ये लोग अभी तक यही मानते आ रहे थे कि निर्जीव मिट्टी से भी जीवन की उत्पत्ति स्वत: हो सकती है। यह सच है कि ग्रब, मैगट, टेपवर्म और चूहे की उत्पत्ति के विषय में तो इन्सान, इटैलियन वैज्ञानिक फ्रांसिस्को रेडि के बाद, अब यह मानने लगा गया था कि ये स्वयंभू नहीं है, किन्तु यह विश्वास अब भी प्रचलित था कि माइक्रोब्स की उत्पत्ति किन्हीं जीव-रहित ऑर्गेनिक द्रव्यों से ही होती है।

इन क्षुदाणुओं की उत्पत्ति भई स्वयंभुवी नहीं होती- पास्चर ने आखिर यह भी सिद्ध कर दिखाया। उसके कीटाणु-सिद्धान्तों का ही यह प्रसाद था कि फ्रांस का रेशम का कारोबार नष्ट होते-होते बच गया। उसने एक जलील बीमारी 'एन्थ्रैक्स' (गिल्टी बनना) के विषय में भी अध्ययन किया और यूरोप-भर के पशुओं को इसके जबड़े में जाने से बचा लिया। उसने गैंग्रीन (चमड़ी बगैरह का गलने लग जाना,) और खून में जहर फैलने का, और प्रसव-ज्वर का भी व्यापक अध्ययन किया और क्योंकि इन सब बिमारियों का कारण भी कीटाणु ही थे, इन्हें नियंत्रित करने की विधि भी परिणामत: वह चिक्तिसक-जगत् को दे दिया।

और फिर पागल कुत्ते के काटने से पैदा होने वाली हलकेपन की वह लानत भी पास्चर की प्रयोगशाला में पहुँची। इसका भी कुछ समाधान करना होगा; और पास्चर ने अद्‌भुत कुशलता के साथ एक नौ साल के बच्चे की जिन्दगी को एक ही टीके से बचाकर चंगा कर दिखाया। बेचारे को कुत्ते ने इस बुरी तरह काटा था कि गरम सींख को तो बरदाश्त कर सकना भी उसके लिए कभी मुमकिन न होता।

पास्चर की मृत्यु 28 सित्बर, 1891 को हुई। उसका जीवन-दर्शन खुद उसी के शब्दों में सूत्रित है :

''मुझे पूर्ण विश्वास है कि अविद्या तथा युद्ध की प्रवृत्ति पर, अन्त में विजय विज्ञान और शान्ति की ही होगी; और ये राष्ट्र भी आखिर एक होकर परस्पर विनाश में नहीं, मनुष्य की उन्तति में ही प्रवृत्ति होंगे। भविष्य उन्हीं का होगा जिन्होंने दुखी मानव-जाति के लिए अधिक से अधिक कष्ट उठाए हैं।''

जो मेहनती थे वो इन्सान बने, जो काहिल थे वो रह गये बन्दर

– मीनाक्षी

बचपन में हमारे ऊधम मचाने से तंग आकर हमारी नानी कहतीं, 'बिल्कुल बन्दर ही हो, तुम लोग।' अगर उन्हें सचमुच पता होता है कि हम अपने पूर्वज बन्दर-नानी की ही औलादें हैं तो वह आसमान से गिरतीं और कहीं उन्हें हम यह बता देते कि गोरिल्ला और चिम्पान्ज़ी हमारे करीबी नाते-रिश्तेदार हैं तो गुस्से से उनकी भौंहे चढ़ जाती। वैसे यह बात अपने आप में ही मज़ेदार है कि गोरिल्ला, चिम्पान्ज़ी और हम मनुष्यों की पूर्वज नानी एक थीं।

जीव विज्ञान और एन्थ्रोपोलॉजी (मनुष्य जाति का विज्ञान या नृविज्ञान) का इतिहास हमें बताता है कि अगर गोरिल्ला और चिम्पान्ज़ी ने आलस और काहिली न की होती तो वह भी हमारी जमात में शामिल होते क्योंकि हमारे बन्दर-पड़दादाओं के पड़-पड़-पड़... दादाओं की वह नस्ल जो मनुष्य में तबदील होने की मंज़िल तक पहुँची वह मेहनत करने से कभी पीछे नहीं हटी और उसने साहस के साथ अपने रास्ते की तलाश की।

हमारी इस पुरखिन बन्दर-नानी की कहानी की शुरुआत जंगलों से होती है, जब वह जंगलों में रहती है और पेड़ों की सबसे ऊँची डालों या यूँ कहें कि ऊपरी मंज़िल पर उनका बसेरा होता, और वे एक पेड़ से दूसरे पेड़ और एक डाल से दूसरी डाल पर कुछ यूँ आती-जातीं मानो अपने मकान के गलियारे में ठाठ से सैर कर ही हों और पुल पर गुज़रने का मज़ा ले रही हों। जंगल ही उनका घर था और रसोईघर, उनका सैरगाह भी था और किला भी।

इनका भोजन था फल और गिरियाँ। ऐसा नहीं कि ये उनकी पसन्दीदा 'डिश' थे, बल्कि बात यह थी कि ये उन्हें आसानी से हासिल हो जाते थे।

जंगल की वह ऊपरी मंज़िल जब हमारे इन पुरखों की 'लॉजिंग' और 'बोर्डिंग' बन गयी तब आसानी और तेज़ी के साथ वे एक से दूसरे पेड़ और डाल पर कूदने और पेड़ के तने पर चढ़ने-उतरने के अभ्यस्त होते गये। उनके अगले और पिछले पैरों की बनावट में तब्दीली होने लगी। साथ ही फल तोड़ने और गिरियाँ फोड़ने के लिए उनके दाँत मज़बूत होते गये और उँगलियाँ सधती गयीं। पर हमारी पूर्वज नानी की सन्तानें जंगल की कैदी थीं। वे जंगल से अलग और उसके बाहर नहीं रह सकती थीं। इसे सम्भव बनाया सिर्फ हमारे वानर पड़-पड़...दादे (जिसे कभी मानव या वैज्ञानिक भाषा में पिथेकेथोयस भी कहा जाता है) ने, जो उस कैदखाने की दीवार को तोड़कर बाहर निकल आया और अपने रिश्तेदार गोरिल्ला और चिम्पान्जियों से हटकर अपना अलग रास्ता बनाया। यह कोई एक दिन का करिश्मा नहीं था, इसमें लाखों वर्ष लगे। अपने परिवेश के साथ जद्दोजहद में उसने ख़ुद को बदला और अपने परिवेश को भी।

हमारी पृथ्वी पर मौसम का मिज़ाज धीरे-धीरे बदल रहा था। दिन तो गर्म रहता था पर रातें ठण्डी होने लगी थीं। घने जंगल की जगह अब पेड़ छितराने लगे थे। फल और गिरियाँ देने वाले पेड़ कम हो रहे थे। इन सबका नतीजा यह निकला कि हमारे वानर पड़-पड़-दादाओं का जंगल में रहना, घूमना-फिरना, भोजन जुटाना मुश्किल होता गया। पेड़ों के दरमियान फासला बढ़ने से उन्हें एक से दूसरे पेड़ पर जाने के लिए भी डालों का सहारा न रहा और उन्हें नीचे उतरना पड़ता। इस बात का ख़तरा भी लगातार मौजूद रहता कि नुकीले पंजे और पैने दाँतोंवाला कोई जानवर उन्हें अपने लंच या ब्रेकफास्ट में न शामिल कर ले। तब उनके लिए जरूरी हो गया कि वे अपने पिछले दो पैरों की मदद से ज़मीन पर ही चलना सीखें। पेट भरने और दुश्मनों से मुकाबला करने के लिए अपने दोनों हाथों को आज़ाद करें। और उन्होंने यही किया। ये चौपाये अपने चारों पैरों से चलने की जगह अपने पिछले दोनों पैरों पर ज्यादा से ज्यादा बोझ डालकर अगले दोनों पैरों से कभी-कभी टेक लेने और फिर पूरी तरह पिछले दोनों पैरों पर खड़े होकर चलने लगे। हालाँकि ये पूरी तरह से सीधे खड़े नहीं होते थे और न ही इनकी बाँहें और हथेलियाँ हमारे तुम्हारे जैसे होते थे। ये उनके घुटनों से तब काफ़ी नीचे झूलते थे। ये हाथ भले ही भद्दे थे लेकिन उनकी हथेलियों और उँगलियों के गठन में ऐसे बदलाव आ चुके थे कि चीज़ों पर उनके हाथों की पकड़ बन सके। वे पत्थर और टहनियों को ठीक से पकड़ सके। हाथों को आज़ाद करने की यह प्रक्रिया कोई आनन-

फानन में नहीं घट गयी, इसमें भी कई सौ वर्षों का समय लगा। अब हाथों के इस्तेमाल से वे पत्थरों और लकड़ी के डण्डों को औज़ारों की तरह उपयोग करने लगे। इस तरह हमारे वानर पूर्वज ने भूख और दुश्मन को पटखनी दी।

हमारी वानर नानी की दूसरी सन्तानों का क्या हुआ? ये वानर (जो श्रम न कर सके, अपने आप को बदल नहीं पाये और अपने हाथों को आज़ाद नहीं कर सके) वनों के साथ खिसकते रहे और सदैव बनवासी बने रहे। उन्होंने सिर्फ इतना ही किया कि डालों पर और फुर्ती से तथा और अच्छी तरह से कूदना और चढ़ना सीख लिया। जो ये भी न कर पाये उनमें से वही बचे जो बड़े और शक्तिशाली थे। वे भारी होने के कारण पेड़ों पर नहीं रह सके। और ज़मीन पर आने को मजबूर हो गये। हमारे ये गोरिल्ला और चिम्पान्ज़ी रिश्तेदार औज़ार पकड़ना तो नहीं सीख पाये, बस शक्तिशाली जबड़े और बड़ें दाँत ही इनका हथियार बने। यहीं से आदिम मानव और उसके इन रिश्तेदारों के रास्ते अलग हो गये।

अब हमारे ये आदिम दादे, जो ज़मीन पर चलना सीख चुके थे, खुली जगहों से डरते न थे क्योंकि इनका पूरा झुण्ड अभ एक साथ किसी दुश्मन का पत्थरों और डण्डों से मुकाबला कर सकता था। अब इनके पास एक नयी ताकत थी–हाथों का इस्तेमाल करने की ताकत, श्रम की ताकत। और इसी ताकत ने धीरे–धीरे उन्हें वानर से मनुष्य में बदल डाला।

हमारा यह आदिम पुरखा अनगढ़ पत्थरों और डण्डों की जगह धीरे–धीरे पत्थरों से नुकीले औज़ार बनाने लगा, डण्डों के एक सिरे को नुकीला करने लगा। अपने भोजन को वास्ते कन्दमूल को उखाड़ने के लिए वह इस नुकीले डण्डे का इस्सेतमाल करता। नुकीले पत्थर के हथियार शिकार करने में उनकी मदद करते। वह पत्थर और डण्डे के इस्तेमाल से आगे जाकर औजार बनाना सीख रहा था पर यह कोई आसान काम ना था और इसके लिए उसे अच्छा पत्थर ढूँढना होता। पहले उससे खूब सख्त पत्थर ढूँढा, फिर उसने पाया कि सख्त पत्थर को काटना गढ़ना लगभग नामुमकिन–सा था। तब उसने कम सख्त पत्थर का उपयोग करना सीखा होगा। उपयुक्त पत्थर ढूँढ़ने के बाद उसे छीलने, तोड़ने और गढ़ने की ज़रूरत पड़ती। हमारा वह आदिम दादा श्रम कर रहा था और धीरे–धीरे उसकी उँगलियाँ काम करना सीख रही थीं।

इसके साथ एक चीज़ और हुई। पहले उसका पूरा समय सिर्फ अपने और अपने बच्चों के लिए खाना जुटाने में बीतता, जबकि अब इन औज़ारों की मदद से वह अपना काम जल्दी और आसानी से निपटा लेता। इस तरह मिले खाली समय में वह औज़ारों को गढ़कर उन्हें लगातार अच्छे से अच्छा और तेज़ से तेज़ बनाता गया। और कन्दमूल तथा छोटे–छोटे जानवरों का शिकार करने वाला हमारा आदिम–दादा अब बड़े–बड़े जन्तुओं का शिकार करने लगा। उसके औज़ार जितने अधिक सुधरते गये वह उतना ही शिकारी जीवन अपनाता गया। इससे उसे खाने के लिए मांस उपलब्ध होने लगा जो अधिक पौष्टिक और अधिक शक्ति देने वाला आहार था और जो कम समय लगाने से ही प्राप्त हो जाता था। इस पौष्टिकता और शक्ति से उसके दिमाग़ का आकार भी क्रमशः विकसित होता गया।

इसके साथ ही हाथों ने पत्थर से लेकर लोहे को औजार बनाना और इस्तेमाल करना सीखा। बर्तन–भाँड़े बनाना, खेती करना और मशीन चलाना सीखा और श्रम की इस प्रक्रिया में उसके हाथ और सुघड़ और उपयोगी होते गये। उसकी चेतना का विकास होता गया। फिर तो कुछ भी उसके आड़े नहीं आ सका। उसने लेखनी पकड़ी; चित्रकारी के लिए ब्रश का इस्तेमाल करना सीखा और संगीत के लिए सितार और तबले पर उसकी संधी उँगलियाँ कुशलता से दौड़ने लगीं।

एक अकेली चीज़ जिसने हमारे आदिम दादाओं को आदमी बनाया–वह था उसका समूह में रहना, समूह में शिकार करना तथा समूह में औज़ार बनाना यानी सबके साथ मिलकर श्रम करना। यहाँ एक अकेले ने नहीं बल्कि पूरे समुदाय ने अपना हाथ और दिमाग़ एक साथ लगाया। आज की हमारी दुनिया अपने तमाम आविष्कारों के साथ ऐसे ही बनी–करोड़ों लोगों के श्रम की बदौलत।

> ''जो लोग ये कहते हैं कि सब कुछ पहले से तय है
> और हम उसे बदल नहीं सकते–
> वे भी सड़क पार करने से पहले
> दोनों ओर देखते हैं।''
> **–अल्बर्ट आइंस्टीन**

चौरी-चौरा काण्ड

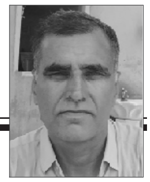
चौरी-चौरा काण्ड अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ देश की जनता की बग़ावत थी। उस समय स्वराज के लिए पूरे देश में आन्दोलन चल रहा था। गांधी जी के सत्याग्रह या नागरिक अवज्ञा के कार्यक्रम के पहले से ही आम लोग सड़कों पर अपना विरोध प्रकट कर रहे थे। फ़ैक्टरियों में, मिलों में, गोरों के चाय-बग़ानों में हड़तालें हो रहीं थी। किसान ब्रिटिश राज के साथ-साथ जुल्म करने वाले जमीदारों के ख़िलाफ़ भी आन्दोलन कर रहे थे। रौलेट एक्ट और जलियाँवाला बाग़ हत्याकांड के बाद लोगों का गुस्सा ओर भड़क उठा था। आम लोग, किसान, मज़दूर, छात्र सड़कों पर उतरकर जगह-जगह आन्दोलन कर रहे थे। लोगों में आज़ादी की आकांक्षा बलवती हो रही थी। ऐसे समय जब गांधी ने असहयोग आन्दोलन का नारा दिया तो देश की जनता बड़ी उम्मीद के साथ इस आन्दोलन में कूद पड़ी। लोग सरकारी नौकरियों का बहिष्कार करने लगे, ब्रिटिश शासन की ओर से मिली उपाधियाँ लौटाने लगे। कई जगहों पर उन्होंने सरकारी टैक्स देना बन्द कर दिया। छात्र सरकारी स्कूलों और कॉलेजों का बहिष्कार करने लगे। अंग्रेज़ों की सेना में भरती होने से लोगों ने इन्कार करना शुरू कर दिया। विदेशी कपड़ों की होली जलायी जाने लगी।

आन्दोलन के इसी दौर मे ंगोरखपुर के निकट चौरी-चौरा इलाके में आन्दोलनकारी कार्यकर्ताओं ने बढ़ती कीमतों का विरोध करने के लिए 2 फरवरी 1922 को बाज़ार में शान्तिपूर्ण ढंग से जुलूस निकाला। उस समय चौरी-चौरा में सामानों का बहुत बड़ा बाज़ार लगता था। अब सरकार की पुलिस को यह कैसे बरदाश्त होता कि उसके सामने कोई विरोध या प्रदर्शन करे। उसने उन पर लाठियाँ चलायीं, बुरी तरह मारा-पीटा और जुलूस के नेताओं को गिरफ्तार कर थाने में बन्द कर दिया। पुलिस की इस ज्यादती के ख़िलाफ़ और गोरी सरकार के विरोध में आन्दोलन के कार्यकर्ताओं ने 5 फ़रवरी 1922 की तारीख़ तय की। उस दिन बाजार में शराब की एक दुकान पर धरना देने का फैसला भी लिया गया। उद्देश्य था, शराब की बिक्री पर रोक लगाना। तय तारीख को चौरी-चौरा और आसपास के 60 गाँवों से 2000-2500 की संख्या में लोग जमा हो गये और बाज़ार की तरफ जुलूस की शक्ल में बढ़ने लगे। इनमें कार्यकर्त्ता और मेहनत-मज़दूरी करने वाले बिल्कुल आम लोग थे। पुलिस ने वही किया जिसके लिए उसे तनख़्वाह मिलती थी। उसने एक बार फिर जुलूस पर लाठियाँ भाँजी और नेताओं को गिरफ्तार कर उन्हें जेल में डाल दिया। आज़ादी के वीरों का यह जुलूस अपने नेताओं को छुड़ाने के लिए पुलिस चौकी की तरफ बढ़ने लगा। लोग गुस्से से भरे हुए थे। वे अंग्रेज़ सरकार के ख़िलाफ़ नारे लगा रहे थे और अपने साथियों को छोड़ने की माँग कर रहे थे। पुलिस ने धमकाते हुए हवाई फायर किया पर जुलूस आगे बढ़ता गया। पुलिस ने सीधे जुलूस पर गोली चला दी। उसे भला कब लोगों की जान की परवाह थी, वह तो बस सरकार की सेवक होती है। गोली लगने से तीन लोगों की मौत हो गयी और कई लोग जख़्मी हो गये। इतने दिनों से जमा लोगों का गुस्सा फूट पड़ा था। उन्होंने पुलिस चौकी फूँक दी, जिसमें 22-23 सिपाहियों की मौत हो गयी। उनके लिए पुलिस चौकी ब्रिटिश शासन का प्रतीक था और वे इस शासन से अपनी आज़ादी के लिए लड़ रहे थे। पर गांधी जी ने इस बात को नहीं समझा। ऐसे समय जब असहयोग आन्दोलन पूरे उभार पर था और अंग्रेज़ सरकार पर लोगों का दबाव बढ़ रहा था उन्होंने आन्दोलन वापस ले लिया। देश की जनता पर इसका बहुत बुरा असर पड़ा। उनकी उम्मीदें टूट गयीं। अंग्रेज़ सरकार ने चौरी-चौरा और आसपास के इलाकों पर मार्शल लॉ (सेना का नियंत्रण) थोप दिया। हज़ारों लोगों को गिरफ्तार कर लिया गया। चौरी-चौरा की घटना के लिए 228 लोगों पर मुक़दमा चलाया गया, जिसमें 172 लोगों को फाँसी की सज़ा सुनायी गयी। इस फ़ैसले का चारों तरफ से विरोध होने लगा। इलाहाबाद हाईकोर्ट ने फिर से इस मामले की समीक्षा की। 19 लोगों की फाँसी की सज़ा फिर भी बनी रही। बाकी लोगों में कुछ को ज़िन्दगी भर के लिए और कुछ को लम्बे समय के लिए कैद की सज़ा मिली।

यह दुख की बात है चौरी-चौरा की घटना को आज़ादी की चाहत लेकर लड़ने वालों के नाम **शेष पृष्ठ 18 पर**

जब चानन की अपनी रौशनी लौटी...

अजायब जलालआना



बात कुछ वर्ष पुरानी है..जब हमारी कालांवाली मण्डी के आस-पास खून प्रदान, आँखें प्रदान करने की मुहिम जोरों पर थी। साथ ही शरीर प्रदान करने की शुरुआत तर्कशील कर चुके थे...

गांव चोरमार के मास्टर श्रीराम जो गुर्दे की बीमारी से लम्बे समय से पीड़ित थे।आखिर जब उनके दोनों गुर्दे काम करना छोड़ गए तो डॉक्टरों ने उन्हें जल्दी गुर्दा बदलवा लेने की सलाह दी..

जब उन्हें कहीं से भी गुर्दा प्रदानी न मिला, तो आखिर में श्रीराम के ताया चानन राम उन्हें गुर्दा देने के लिए तैयार हो गए... जो अविवाहित थे जिनकी उम्र 70 वर्ष के करीब थी.. वे लगभग 40 वर्ष से दोनों आँखों से अंधे घर बैठे थे... उनकी एक आँख चेचक की बीमारी के कारण 50 वर्ष से बन्द थी, और दूसरी आँख सफैद मोतिया से बन्द थी।और उन्होंने बिना किसी लालच के अपनी इच्छा से आखिर अपना एक गुर्दा श्रीराम को प्रदान करके उन्हें नया जीवन दे दिया। जिसकी आस-पास के क्षेत्र में काफी चर्चा हुई थी।

उधर तर्कशील इकाई कालांवाली के साथी खून प्रदान, आँख प्रदान और शरीर प्रदान मुहिम में जुड़े होने के कारण चानन राम द्वारा किये गए इस कार्य जो किसी बगैर लोभ-लालच के गुर्दा प्रदान करने पर उन्हें भी कुछ मान सम्मान देने की ठानी हुई थी। उनसे मिला गया, अंधे लोगों के पुनः आँख (पुतली)लगने या न लगने का डॉक्टरों द्वारा साधारण रूप से बताया गया फार्मूला चानन राम पर जब आजमाया गया तो हम उसमें सफल रहे। उन्हें अँधेरे कमरे में बैठाकर लाईट की स्विच ऑन-ऑफ की तो वे रौशनी और अँधेरे के अहसास को थोड़ा बहुत जान रहे थे। हमने समझा इनकी आँख की रौशनी पुनः प्राप्त की जा सकती है। इसके बाद हमने उन्हें डॉक्टर से चैकअप कराया, डॉक्टर द्वारा उन्हें आँख पुनः लगने की हरी झण्डी दे दी गई..

कुछ दिनों बाद कालांवाली मण्डी में एक मजदूर परिवार की वृद्ध औरत की मौत हुई। उनके परिवार वालों ने तर्कशील इकाई कालांवाली के सदस्यों से आँख प्रदान करने की बात की। हमने रैड क्रास सिरसा और डा. प्रवीन से चानन राम के इसी आँख (पुतली) को प्रत्यरोपित करने की अपील की। उन्होंने हमारी मांग को पूरा करते हुए चानन राम को सिरसा ले आने को कहा। दूसरे दिन ही उन्हें हस्पताल दाखिल करवाया गया.. वह आँख चानन राम को फ्री में लगा दी गई। जो 50 वर्ष पहले चेचक की बीमारी के कारण आँख बन्द थी अब उसी आँख से उन्हें दिखने लगा...तब हमें अपने कार्य खून प्रदान,आँख प्रदान और शरीर प्रदान की सार्थकता का उच्च अहसास हुआ...

ये घटना किसी 'चमत्कार' से कम नहीं थी। विज्ञान से यह तभी सम्भव हुआ जब किसी ने मृत्यु उपरांत आँख प्रदान की। आधी शताब्दी से चानन राम की बन्द आँख की रौशनी जब लौटी तो उन्होंने अपने घर परिवारिक सदस्यों, बच्चों, आसपड़ोस के लोगों के रंग-रूप को देखा होगा तो कैसा अनुभव किया होगा? यह आप सहजता से अंदाजा लगा सकते हैं!!!

94167 24331

पृष्ठ 17 का शेष से नहीं याद किया जाता है। इसे पुलिस चौंकी जला दिये जाने के लिए याद किया जाता है। जुल्म करने वाले सिपाहियों को हीरो और देश की आज़ादी के लिए बलिदान हो जाने वालों को विलेन बना दिया जाता है। अंग्रेज़ों ने सिपाहियों की याद में स्मारक बनवाया यह तो समझ में आता है, पर आज़ाद होने के बाद हमारे देश को अपने इन बहादुरों का स्मारक बनाने की सुध जल्दी क्यों नहीं आयी? अपने इन बहादुर सपूतों की याद में सबसे पहले तो चौरी-चौरा के लोगों ने स्मारक खड़ा किया। बहुत बाद में जाकर सरकार की तरफ से शहीद स्मारक बनवाया गया।

चौरी-चौरा काण्ड देश की बहादुर जनता का विद्रोह था, अपनी गुलामी के ख़िलाफ, अपने देश पर कब्जा जमाकर बैठे अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़। इतिहास इनकी कुर्बानियों को हमेशा याद रखेगा और हम भी।

स्रोतः बाल पत्रिका ''कोंपल''

अवसाद को अभिव्यक्ति चाहिए, अवरोध या दमन नहीं

अनुराग त्रिपाठी

अवसाद एक प्रकार का मानसिक असंतुलन होता है जो मुख्य रूप से इंसान के मूड या मनोदशा से संबन्धित होता है और यह विश्व भर में तेजी से फैलता जा रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन या WHO द्वारा प्रदर्शित आंकड़ों से यह स्पष्ट है कि सम्पूर्ण विश्व में 30 करोड़ (300 मिलियन) से अधिक लोग अवसादग्रस्त हैं और यह संख्या 2005 से लेकर 2015 के बीच में 18 प्रतिशत बढ़ी है। इसे मानव स्वास्थ्य के प्रति गंभीर चिंता के रूप में लेते हुए WHO ने इस वर्ष 7 अप्रैल को मनाए गए विश्व स्वास्थ्य दिवस की विषयवस्तु (थीम) को ही 'अवसाद' रख दिया था और अवसाद के ऊपर 1 वर्ष का वैश्विक अभियान (ग्लोबल कैम्पेन) भी शुरू किया है।

परिचय

पिछले कुछ दशकों में देश की अर्थव्यवस्था शारीरिक-कार्य आधारित से हटकर मानसिक-कार्य आधारित की ओर रुख कर चुकी है। जहां दिमागी गतिविधियां, शारीरिक गतिविधियों पर हावी हो चुकी हैं और ये ही विश्व की अर्थव्यवस्था को ऊंचाई तक ले जा रही हैं। अब हम एक ऐसे दशक से गुजर रहे हैं जहां मानसिक-कार्य आधारित अर्थव्यवस्था भी रूप बदल कर डिजिटल-गैजेट आधारित अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ रही है जहां कृत्रिम बुद्धि एवं ज्ञान, काल्पनिक वास्तविकता, रोबोटिक्स आदि ही मुख्य प्रेरक शक्ति होंगे और ये मानव का स्थान लेंगे। निश्चित रूप से इन सभी विकास कार्यों ने विश्व की अर्थव्यवस्था को नए आयाम तक पहुंचाया है लेकिन इसमें मानव स्वास्थ्य को दांव पर लगाया गया है या हम कह सकते हैं कि मानव स्वास्थ्य की कीमत पर अर्थव्यवस्था को ऊंचाइयों तक पहुंचाया गया है। प्रत्येक मानव का शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक रूप से स्वस्थ्य एवं सुखी होना ही स्वास्थ्य की वास्तविक परिभाषा है जिसे WHO ने ही परिभाषित किया है। शारीरिक रोगों के लिए पर्याप्त चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध हैं लेकिन मानसिक रोगों के लिए उपलब्ध चिकित्सा सुविधाएं पर्याप्त नहीं है, विशेषकर भारत में। सरकारी आंकड़ों के अनुसार भारत में 13 प्रतिशत से अधिक लोग किसी न किसी तरह के मानसिक असंतुलन से पीड़ित हैं और 80-90% मामलों में ये लोग बिना इलाज के ही रहते हैं। ऐसा या तो जागरूकता के अभाव में होता है अथवा पर्याप्त चिकित्सा सुविधाओं के अभाव में। भारतीय सरकार ने इस मुद्दे पर 27 मार्च 2017 को लोकसभा में इससे संबन्धित एक बिल 'मेडिकल हैल्थ केयर बिल-2016' को पास किया। इस बिल में मानसिक बीमारी को इस तरह से परिभाषित किया गया है ''मानसिक बीमारी वह होती है जब किसी व्यक्ति के सोचने, समझने, ध्यान देने या याद रखने की क्षमता अथवा उसकी मनोदशा जो प्रमुख रूप से निर्णय लेने, सच पहचानने, जीवन की सामान्य जरूरतों को पूरा करने की क्षमता अथवा उसके स्वभाव में सहायक होती है, में यदि बहुत बड़ा असंतुलन पाया जाता हो। आम तौर पर मानसिक स्थितियां शराब और नशे की लत से जुड़ी होती है। इस बिल में कुछ प्रावधान किए गए हैं जैसे मेंटल हैल्थकेयर में भारत के समस्त नागरिकों को पहुंच का अधिकार, इसे भारत सरकार द्वारा चलाया जाना व आर्थिक अनुदान मिलना, सबके साथ बराबरी का व्यवहार व अमानवीय व्यवहार से सुरक्षा; और कानूनी सुविधाओं तक सबकी पहुंच। इसके अलावा यह बिल आत्महत्या के प्रयास को अपराध की क्षेणी से अलग करता है जबकि पहले आत्महत्या के प्रयास को भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत अपराध माना जाता था। भारत में अवसाद, मानसिक बीमारियों के कुल मामलों में से एक तिहाई लोगों में देखा जाता है। अतः इस पर उचित ध्यान देने की आवश्यकता है और इसकी चिकित्सा के बारे में अध्ययन एवं प्रावधान विकसित करने की भी अत्यंत आवश्यकता है।

अवसाद क्या है?

अवसाद एक मानसिक स्थिति है जिसमें लोग नकारात्मक विचारों के आदी हो जाते हैं अथवा उनकी स्मृति में स्थित पहले की किसी घटना या परिस्थिति के बारे में ही सोचते है या बातें करते है और जीवन के प्रति विश्वास खो देते हैं। ये सब उनके व्यवहार में भी झलकता है जैसे भूख कम लगना, नींद ठीक से न आना, किसी काम में मन न लगना, ध्यान भटकना और दैनिक कार्यों में रुचि न लेना आदि। एक अवसादग्रस्त व्यक्ति लगातार दुखी ही रहता है और लोगों से मिलना जुलना उसे पसंद नहीं आता है।

अत्यधिक अवसाद की स्थिति में रोगी के भीतर कभी कभी आत्महत्या की ओर रुझान भी बढ़ता हुआ देखा गया है।

अवसाद के कारण

वास्तव में अवसाद का कोई कारण नहीं है बल्कि यह व्यक्ति के स्वभाव या व्यवहार पर निर्भर होता है। जीवन में घटी कोई अप्रिय घटना जैसे प्यार में धोखा या पारिवारिक सम्बन्धों में धोखा, कैरियर में असफलता, किसी प्रियजन की मृत्यु, संवेदनाओं का आहत होना, सामाजिक प्रतिष्ठा में कमी आना आदि कई ऐसे कारण हैं जो किसी व्यक्ति को अवसाद की ओर ले जाते हैं। आम तौर पर एक व्यक्ति तब अवसाद में आता है जब उसकी उम्मीदें पूरी नहीं हो पाती हैं या उनमे वह असफल हो जाता है, लेकिन उसे वह पाने की पूरी चेष्ठा करता है जिससे उसके मन में नकारात्मक विचार आते हैं और ये ही आगे चलकर चिंता और अवसाद का कारण बनते हैं। आधुनिक समय में स्मार्ट फोन, कम्प्यूटर, सोशल मीडिया या अन्य इलेक्ट्रॉनिक गैजेट्स पर अत्यधिक निर्भरता भी लोगों को सामाजिक मेल मिलाप एवं पारिवारिक रिश्तों से दूर ले जा रही है जिसके परिणाम स्वरूप मानसिक असंतुलन के मामले अधिक देखने में आ रहे हैं जैसे असंतुलित कार्य करना, ध्यान भटकना, किसी चीज में ध्यान केन्द्रित न कर पाना, अधिक उत्साहित हो जाना, अधिक गुस्सा आना आदि। इस डिजिटल प्रेरित मनोदशा, असंतुलन से अवसाद, डिमेन्शिया (स्मरण क्षमता में कमी) और अन्य कई प्रकार की मानसिक बीमारियां होती हैं।

प्रारम्भिक अवस्था में नकारात्मक भावनाओं से मस्तिष्क में तनाव उत्पन्न होता है जिसकी वजह न्यूरो केमिकल्स में आने वाले बदलाव होते हैं। लेकिन इनकी ओर ध्यान न देने की वजह से व्यक्ति को तनाव, चिंता और बेचैनी, क्लिनिकल डिप्रेशन या पोस्ट ट्रौमेटिक स्ट्रेस डिसोर्डर (PTSD) हो जाता है। यदि यह बहुत दिनों तक बिना चिकित्सा के चलता रहता है तो अवसाद के कारण बहुत से न्यूरोकेमिकल और न्यूरो-ऐनाटोमिकल परिवर्तन हमारे मस्तिष्क में होते हैं जो आगे चलकर व्यक्ति को असंतुलित संज्ञानात्मक कार्य तथा विचलित मानसिक स्थिति की ओर ले जाते हैं। अंतिम चरण में अवसाद से होने वाले लगातार नकारात्मक आवेगों के कारण व्यक्ति के भीतर आत्महत्या करने जैसे भी विचार आने लगते हैं। शुरुआती दौर मे जब व्यक्ति तनाव से होकर गुजरता है तब परिवार के लोगों की उचित सलाह और देखभाल के द्वारा इसे ठीक किया जा सकता है लेकिन एक बार जब यह स्थिति बिगड़ जाती है तब हमें मनोचिकित्सक के परामर्श एवं चिकित्सा की आवश्यकता होती है। हालांकि अवसाद एक न्यूरोबायोलोजिकल घटना है जिसकी वजह से हमारे शरीर के भीतर बहुत से न्यूरोकेमिकल, न्यूरोऐनाटोमिकल और हार्मोनल परिवर्तन होते हैं। अवसाद की न्यूरोबायोलोजी को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम मानव मस्तिष्क के बारे में संक्षिप्त रूप में जाने।

अवसाद के रोकथाम के उपाय एवं उपचार

यह अत्यंत आवश्यक है कि आप ऐसे किसी भी व्यक्ति की बदलती मनोदशा के प्रति पूर्णतः सचेत रहें। उचित देखभाल और जागरूकता के कारण अवसाद या अन्य मानसिक रोगों से लोगों को दूर रखा जा सकता है। हमारी शारीरिक गतिविधियां एक लयबद्ध तरीके से चलती हैं या शरीर की प्राकृतिक घड़ी के अनुसार चलती रहती हैं। अतः हमें एक अनुशासनपूर्ण जीवन जीने की कोशिश करनी चाहिए जिसमें सोने और जागने का समय निश्चित हो।

1. देर रात तक व्यस्तता और इलेक्ट्रोनिक गैजेट्स पर अत्यधिक निर्भरता से भी बचना चाहिए।

2. हमें अपने परिवार के लोगों और मित्रों के साथ अच्छा समय बिताना चाहिए। सोशल मीडिया की अपेक्षा लोगों से मिलने जुलने को अधिक महत्व देना चाहिए।

3. शराब एवं नशे की लत से दूर रहना चाहिए।

4. नियमित व्यायाम, योगाभ्यास और ध्यान को हमारे दैनिक जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा बनाना चाहिए। हमें रोज कम से कम 30 मिनट तक इन अभ्यासों पर समय बिताना चाहिए।

5. हमें बिना शर्तों की खुशियों के साथ जीने का अभ्यास करना चाहिए और हमें यह एहसास होना चाहिए कि बाहरी घटनाओं पर किसी का नियंत्रण नहीं होता है, अतः हमें किसी भी परिस्थिति को संतोष के साथ अपना लेना चाहिए।

6. लगातार खुश होने की इच्छा रखने से ही व्यक्ति मूड-संबन्धित असंतुलनों से दूर रह सकता है। इस तरह से हमें खुशियों की आदत या खुश रहने की आदत डाल लेनी चाहिए और जीवन के प्रत्येक क्षण को कृतज्ञता के दृष्टिकोण के साथ जीना चाहिए।

7. यदि कोई व्यक्ति दुख महसूस करता है तो वह

स्वयं को कुछ न कुछ रचनात्मक कार्यों जैसे बगीचे में पेड़ पौधों के साथ समय बिताना और उनकी देखभाल करना, अच्छा संगीत सुनना, नई जगहों पर घूमने जाना, प्रेरणा दायी पुस्तकें पड़ना, प्रेरणात्मक वीडियो देखना और मस्तिष्क को नया कार्य देना आदि में व्यस्त कर सकता है। इस तरह के कार्यों का लगातार अभ्यास करने से नकारात्मक संवेदनाओं का दमन होगा और इसके बदले आत्म विश्वास, आत्म गौरव और सकारात्मक विचारों का जन्म होगा।

8. जब लगातार नकारात्मक विचार दिमाग में चलते रहते हैं तो व्यक्ति को स्वयं उसे समझ लेना चाहिए और अपना ध्यान वहां से हटकर सकारात्मक विचारों तथा जीवन के महत्वपूर्ण लक्ष्य की तरफ केन्द्रित करने की कोशिश करनी चाहिए।

9. समाज में इस बात की जागरूकता जरूर फैलानी चाहिए कि किसी भी तरह की मानसिक बीमारी किसी भी अन्य शारीरिक बीमारी की तरह ही होती है और उचित इलाज एवं देखभाल से इसे पूर्णत: ठीक किया जा सकता है। इसे छिपाना नहीं चाहिए और न ही इसे किसी प्रकार की शर्म की बात समझना चाहिए, बल्कि इसका इलाज भी संभव है यह मानते हुए तुरंत डॉ. से संपर्क करना चाहिए। अवसाद से ग्रसित रोगी को परिवार वालों की उचित देखभाल की आवश्यकता होती है।

10. जब क्लीनिकल या नैदानिक लक्षण दिखाई देने लगें तब आपको किसी मनोचिकित्सक के पास जाना चाहिए और उसके निर्देशानुसार नियमित रूप से दवाएं लेनी चाहिए। केवल एक प्रशिक्षित मनोचिकित्सक के प्रेसक्रिप्शन या पर्चे पर ही दवाएं लिखी या बदली या उनकी डोज में परिवर्तन किया गया स्वीकार करना चाहिए अन्यथा नहीं।

11. लगातार व्यायाम का अभ्यास, योगाभ्यास, गहरी सांसे लेना छोड़ना, और अन्य विश्राम अभ्यास जैसे संगीत, कला, ध्यान आदि करने चाहिए जिससे अवसाद के रोगी जल्दी ही ठीक होने लगते हैं। लेकिन ये सभी अभ्यास उचित दवाओं के साथ साथ करने चाहिए।

12. कई प्राकृतिक उत्पाद और अभ्यास भी अवसाद को कम करने में मदद करते है जैसे सूर्य की रोशनी में बैठने से सिरोटोनिन का स्तर बड़ता है, दूध भी सिरोटोनिन का एक अच्छा स्रोत है। गहरी सांस लेना-छोड़ना और प्राणायाम का अभ्यास भी चिंता और तनाव के स्तर को घटाता है। इसका कारण है कि इनसे एंडोर्फिंस और ऑक्सीटोसिन का रिसाव होता है और कोर्टिसोल का स्तर घटाता है। पानी पीना, खट्टे फल जैसे संतरा, स्ट्राबेरी आदि खाने से भी मनोदशा या मूड अच्छा रहता है और अवसाद के स्तर में कमी आती है। इस तरह से यह पूरी तरह से ठीक हो सकने वाला असंतुलन है और इसे केवल उचित चिकित्सा और देखभाल की ही आवश्यकता होती है। अवसाद से जो व्यक्ति ग्रसित है या जिस व्यक्ति को तनाव महसूस हो रहा है वह अपने विचार अवश्य व्यक्त करे और स्वयं को किसी सामाजिक गतिविधि अथवा रचनात्मक कार्य में अवश्य व्यस्त रखे। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अवसाद को अभिव्यक्ति चाहिए, अवरोध या दमन नहीं। **अनुवाद - संगीता चतुर्वेदी**

साभार: ड्रीम 2047

विद्या भवन उदयपुर ट्रस्ट की ओर से 3 दिन के लिए बाल पुस्तक मेला लगाया गया। जिसमें शामिल होने के लिए उन्होंने तर्कशील सोसायटी पंजाब को आमंत्रण भेजा। राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय तालमेल विभाग के सहयोगी साथी रामकुमार ने बच्चों को जादू और चमत्कारों के प्रति जागृत किया। बच्चों को जादू के ट्रिक दिखाकर बताया गया कि किसी भी बाबा या साधु संत के पास कोई चमत्कारी शक्ति नहीं होती। जादू एक कला है और उसे कोई व्यक्ति भी सीख सकता है। इस पृथ्वी पर कोई चमत्कार नहीं होता, सिर्फ घटनाएं घटती है और हर घटना का कोई कारण होता है। चमत्कार लगने वाली घटनाओं की वैज्ञानिक पड़ताल करने के लिए क्या, क्यों, कैसे, कहां सवाल पूछे जाने चाहिए। सत्य तक पहुंचाने के लिए यही वैज्ञानिक ढंग अपनाना चाहिए। इसके अतिरिक्त हिप्नोटिज्म, ज्योतिष, पुनर्जन्म, आत्मा आदि के बारे में भी जानकारी दी गई। अंधविश्वास फैलाने वाले बाबाओं को अब तो सरकारी समर्थन भी मिल गया है। इसीलिए विद्यार्थियों को अब वैज्ञानिक सोच अपनाने की ओर भी अधिक जरूरत है ताकि वह इस धरती को कोई काल्पनिक स्वर्ग नहीं बलकि सही अर्थों में सुंदर और रहने के लायक बना सकें। रामकुमार जी के सेशन को बच्चों ने बहुत ध्यान से सुना और पसंद किया। हिंदी की पांच पुस्तकें ''..और देव पुरुष हार गए'' बच्चों और अध्यापकों ने खरीद लीं। दिल्ली से जंजवार यूट्यूब चैनल के अजय प्रकाश जी ने प्रोग्राम की कवरेज की। अध्यापकों ने समिति के साथ मिलकर काम करने की इच्छा जताई।

-रामकुमार, सहयोगी (राष्ट्रीय व अंतराष्ट्रीय तालमेल विभाग)

रिवाज ही ऐसा है

– राकेश नाथ (सं.)

आज आवश्यकता ऐसे रीतिरिवाजों को ढोने को नहीं, बल्कि उन का तर्कसंगत मूल्यांकन करने में है।

किसी भी धार्मिक, सामाजिक या रोजमर्रा के कार्य को संपन्न करने के किसी ढंग विशेष का औचित्य यदि आप की समझ में न आए और उस काम को करने वाले से यदि आप भूल से पूछ बैठे कि ''ऐसा आप किस लिए कर रहे हैं'' तो आप को उत्तर मिलेगा- ''हमारे यहां ऐसा ही रिवाज है।'' या ''हमारे यहां सदा से यही रीति चली आ रही है।''

''ऐसा रिवाज क्यों है?'' या ''इस को करने से क्या लाभ होता है?'' आदि पूछने पर वे आप को कोई उचित उत्तर नहीं दे पाएंगे सिवा इस के कि ''यह तो पता नहीं कि ऐसा रिवाज क्यों है, पर हमारे यहां तो पीढ़ियों से यही रीति चला आ रही है और जो कुछ हमारे पुरखे करते रहें वही करना हम भी अपना कर्त्तव्य समझते हैं।''

यदि आप उस रिवाज की निरर्थकता पर तर्कसंगत ढंग से प्रकाश डाल कर उस रिवाज से उन्हें विमुख करना भी चाहें तो वे आप की हां में हां मिलाते हुए यही कहेंगे, ''आप का कहना तो ठीक है पर क्या करें? समाज में रह कर रीतिरिवाज तो निभाने ही पड़ते हैं।'' उन रिवाजों को छोड़ने में वे अपनी ऐसी असमर्थता प्रकट करेंगे मानों उन्होंने रिवाजों को नहीं बल्कि रिवाजों ने उन्हें पकड़ रखा हो।

आजकल लोग ओर सब बातें तर्क की कसौटी पर खरी उतरने पर ही मानते हैं पर बड़े-बड़े बुद्धिजीवी और अपने आप को आधुनिक तथा रूढ़िमुक्त समझने और कहने वाले लोग भी धर्म और रीतिरिवाज की बातें आंखे मूंद कर ज्यों की त्यों मान लेते हैं। पुत्र जन्म, मुंडन, यज्ञोपवीत, शादीविवाह, और त्योहार आदि अवसरों पर लोग पगपग पर रिवाजों के अनुसार चलते हैं। इन रिवाजों को करने में इतना समय नहीं लगता जिसका इस चकल्लस में कि ''हमारे यहां तो यह रिवाज इस तरह से किया जाता है।'' सीधी सादी बातों को भी रिवाजों को चक्कर में उलझा कर लोगों ने उन्हें ऐसा जटिल बना दिया है कि न तो उन के उद्देश्य का पता चलता है और न लाभ का।

बेकार की चिल्लपों

इन रिवाजों के कारण निरर्थक सामान जुटाने में लोगों का पैसा और समय तो नष्ट होता ही है साथ ही जो भागदौड़ करनी पड़ती है वह अलग। किसी भी संस्कार के समय छोटी सी बात या जरा सी चीज के लिए भी ऐसी ले दे की पड़ी रहती है कि कोई भी कार्य सुचारू रुप से नहीं हो पाता। रिवाजों के चक्कर में ही मेजबान और मेहमानों को न समय पर ढंग से खाना मिल पाता है, न आराम। रस्मरिवाज पूरे करते करते ही कई बार बरात की गाड़ी छूट जाती है। कई बार बराती गाड़ी में बैठ चुके होते हैं और दुल्हा-दुलहन रह जाते हैं।

कभी ऐसा होता है कि किसी संस्कार में आए मेहमान को निश्चित समय पर कहीं अन्यत्र आवश्यक कार्य होता है किंतु रिवाजों के पूरा न हो पाने के कारण या तो वह अपने आवश्यक कार्य के लिए जा नहीं पाता या उसे बाध्य हो संस्कार बीच में ही छोड़ कर मेजबान को नाराज कर चले जाना पड़ता है।

समय और सामग्री का दुरुपयोग

कुछ दिन पहले मुझे अपने एक संबंधी लड़के की शादी में जाना पड़ा। अधिकांश लोगों की तरह उन लोगों को भी शादी से एक दिन पहले और कई रस्मों के साथ-साथ लड़के का यज्ञोपवीत करना था। वे उस अवसर पर काम में आने वाली सभी वस्तुओं की सूची पंडित से बनवा उन्हें जुटाने में जुट गए। अनाज, दालें, दूध, दहीं, शहद, घी, फल, मिठाइयां, मेवे, मसाले, पानसुपारी और कई रंगों के कपड़ों के अलावा उस सूची में लिखी गई चीज़े खरीदने में उन को अच्छीखासी दौड़-धूप करनी पड़ गई क्योंकि उन को यह पता तक न था कि वे चीज़ें कहां मिलेंगी।

एक ही दिन में कई काम होने-जैसे तेलहलदी की रस्म, यज्ञोपवीत, शादी के भोज और बरात ले जाने की तैयारियों के कारण जनेऊ के समय पहनने के लिए पीला कपड़ा लाने का उन को ध्यान ही ना रहा और मजबूरी में घर में रखी बहुत बढ़िया पापलिन निकाल कर देनी पड़ी जिसे पंडित जी ने कई छोटे-बड़े टुकड़े बना कर हलदी में रंग डाला।

जिस समय पंडित जी कपड़े को बेरहमी से उलटा सीधा फाड़ रहे थे उस समय मेरी यह कहने की इच्छा हुई कि

जब यह कपड़ा पंडित जी को देना ही है तो क्यों न बिना फाड़े सही दशा में दिया जाए ताकि बाद मे वह किसी काम तो आ सके पर चुप रहा क्योंकि रिवाज तो ऐसा है कि धोती लंगोटी, गले में चादर और कंधे पर भिक्षा मांगने की झोली लटका कर ही यज्ञोपवीत होता है।

खैर, अग्नि में बहुत सी वस्तुएं होम कर और मूंज की रस्सी गले में डाल कर यज्ञोपवीत हुआ और विद्यारंभ संस्कार होने लगा। माता पिता की आज्ञा से लड़का पीले वस्त्र और खड़ाऊ पहन कर अध्ययन के लिए काशी जाने लगा तो द्वार पर ही बहन ने यह कह कर उसे रोक लिया, ''भैया, माता पिता को छोड़ कर काशी पढ़ने मत जाओ। घर पर ही पंडित जी से पड़ लेना।'' (बैसे यह तो पहले सी ही निश्चित था कि उसे काशी पढ़ने नहीं जाना है।)

काशी जाने से रोकने की प्रसन्नता में बहन को नेग दे लड़का फिर घर मे आ गया। पंडित जी ने पहले से ही इस काम के लिए मंगवाई गई लकड़ी की तख्ती पर सरकंडे की कलम और खड़िया मिट्टी से लिखवा कर उस की विद्या आरंभ कराई और तुरंत गुरुमंत्र दे कर शिक्षा पूर्ण करवा दी। (गुरुमंत्र कान में दिया जाता है और किसी दूसरे को बताया नहीं जाता, इसलिए मुझे पता नहीं कि ऐसा क्या मंत्र दिया जाता है जिस से एक दो मिनट में ही शिष्य पूर्ण शिक्षा ग्रहण कर लेता है।)

अब अपनी गुरुदक्षिणा प्राप्त करने के लिए पंडित जी ने लड़के के कंधे पर झोली डलवा कर उपस्थित लोगों से सात बार भिक्षा मंगवाई और सभी ने बड़े उत्साहपूर्वक फल, मिठाई, बरतन, रुपए आदि दिए। यज्ञोपवीत कराने की नकद दक्षिणा के साथ-साथ जो भी वस्तुएं पंडित जी ने मंगवाई थीं वे और भिक्षा में प्राप्त सभी चीज़ें उन्होंने ले जाने के लिए समेट लीं।

निरर्थक बातें

यहां पाठकों की जानकारी के लिए यह बता देना भी आवश्यक है कि जिस लड़के का यज्ञोपवीत हुआ था वह उस समय स्नातकोत्तर शिक्षा समाप्त करने के बाद सहायक इंजीनियर के पद पर कार्य कर रहा था। सदा जनेऊ पहनने से वह पहले ही मना कर चुका था। फिर केवल थोड़ी देर के लिए ही जनेऊ पहनने की रस्म करने और उस पर हजारों रुपए खर्च करने की क्या आवश्यकता थी? वह तो अच्छा पढ़ा लिखा था, फिर भी उस से तख्ती पर लिखवा कर विद्यारंभ कराने, कमाते हुए भी गुरुदक्षिणा चुकाने के लिए भिक्षा मंगवाने जैसा हास्यापद अभिनय क्यों कराया गया।

किसी समय विद्योपार्जन के एक मात्र केंद्र गुरुकुल ही होते थे। उस समय आवागमन के साधन न होने के कारण बच्चे एक बार गुरुकुल जा कर, अपनी शिक्षा पूर्ण कर के ही घर लोटा करते थे। माता पिता और बच्चे के आपस में बिछुड़ने से विषाद होना स्वाभाविक ही था, अत: बच्चे के गुरुकुल जाने के समय माता पिता अपने बंधुबाधवों के साथ मिल कर प्रसन्नता का ऐसा वातावरण बनाते होंगे जिस से बच्चा उत्साहपूर्वक शिक्षा प्राप्त करने चला जाए और उस के मन पर माता पिता से बिछुड़ने का कोई ऐसा प्रभाव न रहे जो उस के अध्ययन में बाधक हो।

तब अनिवार्य शिक्षा शुल्क भी न था। गुरुकुलों का खर्च या तो विद्यार्थियों द्वारा की गई खेतीबाड़ी और पशुपालन से चलता था या धनवान लोगों की सहायता से। हां, विद्यार्थी चाहने पर अपनी इच्छा से शिक्षा समाप्त करने के बाद निर्वाह योग्य वेतन ले कर उसी गुरुकुल में अध्यापन कार्य किया करते थे। शिक्षा मांगने जैसा गर्हित कार्य करने या गुरुदक्षिणा चुकाने का तो प्रश्न न था।

ये तो केवल अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए पंडितों द्वारा बनाए गए रिवाज हैं। लोग यह रिवाज करते कराते समय यह भी नहीं सोचते कि जो भिक्षा मंगवाने जैसा कार्य कराए वह क्या आदर्श गुरु होगा और क्या नैतिक शिक्षा देगा?

लूट के तरीके

इसी प्रकार लगभग सभी संस्कारों में अनाज, दूध, घी, फल, मिठाई, कपड़े, बरतन आदि दैनिक प्रयोग की सभी वस्तुएं रखवाने का कारण भी यही है कि ब्राह्मण वर्ग पहले अपने जीवनयापन के लिए और कोई व्यवसाय न कर के दूसरे वर्गों का दान दक्षिणा पर ही पूर्ण रूप से आश्रित रहता था। इसी लिए उस ने अपने काम में आने वाली प्रत्येक वस्तु पूजा पाठ में रखवाने का विधान बनाया।

समय-समय पर अनेक सुधारकों ने यह कोशिश की कि लोग इस प्रकार के ढोंग आडंबरों से दूर रहें, किन्तु लोग उनकी बताई बातें भी तोड़मरोड़ कर ऐसे ढंग से अपनाते हैं कि एक पाखंड को छोड़ दूसरा आरंभ कर देते हैं।

एक आर्यसमाजी सज्जन ने अपने लड़के की शादी में दीवार पर देवी देवता स्थापित न कर लाल चौकोर कपड़े पर सुनहरे कागज में काटा गया धार्मिक चिन्ह चिपका दिया और शादी की सभी रस्में आर्यसमाजी विधि से की गई, बात

आखिर वही रही, हलदीरोली या घीमेंहदी के थापे से देवी देवता न बना कर कागज और कपड़े का दीवार पर टांग दिया गया।

कुछ सुलझे मस्तिष्क वाले व्यक्ति इन व्यर्थ के आडंबरों के विरुद्ध कुछ बोलते भी हैं तो उनकी आवाज बहुत से दकियानूसी लोगों के सामने केवल नक्कारखाने में तूती बजाने जैसी हो जाती है। एक अति शिक्षित, आधुनिक और सुधारवादी परिवार में एक लड़की की शादी हुई। फेरों के बाद वर वधू के कोहबर में अ्रे पर वर से छंद सुन कर रुपए देने का रिवाज है। इस रिवाज पर घर की एक बहू ने आपत्ति की।

उस का कहना था कि ''इस निरर्थक रिवाज को करने का क्या औचित्य? पहले पहल एसा तब हुआ होगा जब अपने कवि और गायक दामाद से सुंदर स्वरचित छंद सुन कर ससुराल वालों ने प्रसन्न हो उसे उपहार दिए होंगे। यही बात एक को देख कर दूसरे ने और दूसरे को देख तीसरे ने की होगी। और फिर तो होते होते यह रिवाज बन गया। अब दामाद का कवि होना तो दूर रहा, स्वर भी चाहे फटेबांस जैसा क्यों न हो, केवल उलटी सीधी, और अशिष्ट तुकबंदियां सुन कर पैसा देना कहां की रस्म है?''

उस की यह बात सुन कर सभी समझदार लोगों ने उस का समर्थन किया। किन्तु अधिकांश स्त्रियां फिर भी अपनी हठ पर अड़ी रहीं और काफी वादविवाद के बाद भी वहीं छंद सुनने वाला रिवाज पूरा किया गया।

किस से पूछें ?

शादी के अवसर पर उत्तर प्रदेश में मिट्टी के दो सकोरे आटे और हलदी के गीले मिश्रण की सहायता से दीवार पर चिपका दिए जाते हैं और यह मान कर कि इन के अंदर आंधी तूफान, लड़ाई-झगड़े, बीमारी, परेशानी आदि आधिव्याधियां बंद हैं, बड़ी शुद्धता से उन की पूजा की जाती है ताकि विवाह निर्विघ्न हो जाए। ऐसा करने वालों से पूछा जाए कि यदि वास्तव में इन के अंदर आधिव्याधियाँ बंद है तो इन की पूजा क्यों की जाती है? क्या ये अच्छी चीज़ें हैं?

यदि बंद भी हो तो शादी के बाद इन्हें खोला क्यों जाता है? सदा के लिए बंद ही क्यों नहीं रहने दी जाती? आपस की तकरार, बीमारी परेशानी तो शादी के समय ही क्यों, किसी समय भी अच्छी नहीं लगती। इन को बंद करने के बावजूद अधिकतर शादियों में लड़ाई-झगड़े क्यों होते हैं? लोग बीमार क्यों पड़ते हैं या आंधीवर्षा क्यों परेशान करती है? उन के पास इस का कोई उत्तर नहीं होगा।

लड़के की शादी में बिल्ली की आकृति बना कर टोकरे में बंद करने का रिवाज बहुत से घरों में हैं। इस रिवाज के मूल में क्या कारण रहा होगा यह तो मुझे मालूम नहीं, पर हो सकता है कि कभी किसी लड़के की शादी में उस की माँ की जरा सी दृष्टि चूकते ही बिल्ली दूध दही या खाना आदि खा गई हो या फिर उसे खराब कर गई हो, बिल्ली के इन उत्पातों से तंग आ कर मां ने किसी प्रकार उसे पकड़ कर बंद कर दिया होगा।

फिर दूसरे लड़के की शादी में वह पहले से ही चौकन्नी होगी और उस ने सब से पहला काम बिल्ली को पकड़ कर टोकरे के नीचे बंद करने का ही किया होगा। बाद में उस की बहू ने भी उस का तरीका अपनाया होगा और उस बहू की बहू ने भी।

कई पीढ़ियों के बाद जब कोई स्त्री अपने लड़के की शादी करने लगी होगी तो उसे भी बिल्ली बंद करने का ध्यान आया होगा। उस ने अपनी सास को बिल्ली बंद करते देखा होगा। पर क्यों, यह उसे मालूम न होगा। बस बिल्ली को बंद करने की बात मालूम होगी। अब बिल्ली किसी तरह पकड़ाई में न आ रही होगी। पर बिल्ली बंद किए बिना शादी कैसे होती? बेचारी बड़ी परेशान हुई होगी। तब किसी ने इस का भी हल सूझा दिया होगा, ''अरे, बिल्ली नहीं है तो क्या हुआ, बिल्ली की आकृति ही बना कर बंद कर लो। राम ने भी तो सीता के स्थान पर सीता की स्वर्ण प्रतिमा रख कर यज्ञ पूरा किया था।'' बस यह सुनते ही उस ने चटपट बिल्की की आकृति बना कर बंद कर ली होगी जो आज तक रिवाज के रूप में चली आ रही है।

जब रसोईघर में किसी के यहां किवाड़ न होगें या खाद्य सामग्री बिल्ली से बचा कर सुरक्षित रखने कोई साधन न होगा तब बिल्ली को बंद करने का तरीका ढूंढना उस समय के लोगों की बुद्धिमत्ता ही मानी जाएगी, पर आज भोजन सामग्री की सुरक्षा के बहुत से साधन होने पर भी बिल्ली की आकृति बंद करने को क्या कहा जाएगा?

सात सुहागिनें

शादी की एक रस्म में सात सुहागिनें मिल कर गेहूं, जौं, हलदी, मसाले आदि बीनने, फटकने और पीसने का अभिनय करती हैं। जब आज की तरह पिसोपिसाए मसाले बाजार में नहीं मिलते थे और अनाज पीसने का साधन भी घरों

की हाथ चक्कियां ही थीं, उस समय शादी में काम आने वाले बहुत से अनाज और मसालों को अड़ोस-पड़ोस की स्त्रियों की सहायता से बीनापीसा जाता था। आजकल तो मसाले पिसोपिसाए मंगवाए जाते हैं। अथवा स्वयं या नौकर आदि से पिसा लिए जाते हैं। अनाज तो चक्की से ही पिसवाया जाता है। फिर भी न जाने क्यों पुरानी लीक को पीटा जा रहा है?

छोटी सी बात भी रिवाज बन कर बड़ा विकृत रूप धारन कर लेती है और लोग उसे करते चले जाते हैं। उत्तर प्रदेश में लड़के की बारात जाने से पहले मां कूएं में पैर लटका कर गिरने बैठ जाती है। वह अपने बेटे से कहती है, ''बेटा, तू तो अब बहू लाने के बाद उसी का हो कर रह जाएगा और मेरा ध्यान नहीं रखेगा।''

बेटा मां को कुछ नेग दे कर कहता है, ''मां, बहू तो तुम्हारी सेवा के लिए ही ला रहा हूँ।''

इस पर मां कुएं से पैर निकाल लेती है। पर प्रश्न यह है कि जो मां अनेक सुखदुख उठा कर बेटे को विवाह योग्य बनाती है और उस की शादी पर फूली नहीं समाती, वह क्यों कुएं में गिरना चाहेगी?

हो सकता है कि किसी मां ने यह कल्पना कर के कि बहू के आने पर बेटा बहू में ही रम जाएगा और मेरा उस पर कुछ अधिकार नहीं रहेगा, कुएं में गिर कर आत्महत्या करने की सोची हो और लोगों को समझाने बुझाने तथा स्वयं बेटे के आश्वासन देने पर आत्महत्या करने से रुक गई हो। फिर उसी घटना ने रिवाज का रूप ले लिया होगा।

इस रिवाज के कारण कई घटनाएं ऐसी भी घट जाती हैं कि या तो मां या बेटा या कोई दर्शक ही सचमुच कुएं में गिर गया। बाजों की तेज आवाज़, इस रस्म को निकट से देखने के लिए उत्सुक भीड़ की धक्कमधक्का और बरात ले जाने की जल्दी से हड़बड़ाहट में की गई इस रस्म के कारण ऐसा हो जाना असंभव नहीं। किसी के कुएं में गिर जाने के कारण जब प्रसन्नता का वातावरण मातम में बदल जाता होगा तब कैसा लगता होगा?.

इस के अलावा इस रिवाज के कारण मां के अवचेतन मन में भी यह ख्याल बैठ जाता है कि बहू ने आ कर मेरा लड़का मुझ से छीन लिया है। और अब मेरा उस पर अधिकार नहीं रहा है। इस धारणा से मां अनजाने ही अकारण बहू से मन ही मन द्वेष रखने लगती है और उसे सच्चे हृदय से प्रेम नहीं कर पाती।

शगुन या गाली ?

शादी के बाद वधू के आने पर उस की गोद में छोटे देवर या और किसी लड़के को बैठा कर उस से कहलवाया जाता है, ''मुझे पेठा, भाभी को सात बेटे,'' बदले में बहू उसे रुपए देती है। परिवार नियोजन के इस युग में सात बेटों की प्राप्ति के लिए कोई शगुन करना केवल विडंबना है और सात बेटे होने बात कहना गाली देने के समान है।

रिवाजों में समानता नहीं

ये रिवाज एक प्रदेश, एक जाति यहां तक कि एक कुटुंब में भी एक जैसे नहीं होते। जितने घर उतने रिवाज, एक ही कुटुंब में अलग-अलग रिवाज कैसे हो जाते हैं इस की एक अजीबोगरीब घटना हमारे पड़ोस में हुई। पड़ोसी सज्जन के यहां जेठ की अमावस्या को सुहागिन स्त्रिया वटवृक्ष की टहनी की पूरीपकवान से पूजा करती हैं।

एक बार उन का इकलौता पौत्र मरणासन्न था। वे कुछ सोचने समझने या करने की मन:स्थिीत में न थे। पड़ोस की एक शुभचिंतिका ने कुछ पूरियां बनाई और हलदी से दीवार पर वटवृक्ष बना कर स्त्रियों से पजुवा दिया क्योंकि यदि वटवृक्ष की पूजा उस दिन न होती तो फिर भविष्य में भी कभी न होती।

बस उसी समय से वटवृक्ष की टहनी सरलता से उपलब्ध हो जाने पर भी उन के यहां हलदी से बना वटवृक्ष ही पूजता है। पर उन के अन्य भाईयों के यहां जिन्हें इस घटना का पता न था, वट की टहनी ही पुजती है। चाहते वह कितनी भी कठिनाई से क्यों न मिले।

रिवाज में भी बड़े अजीब होते हैं। मेरी एक दक्षिण भारतीय पड़ोसन जब ग्रीष्मवकाश के पश्चात आई तो देखा कि उस के घने, चमकीले और कमर से काफी नीचे तक झूलने वाले, नाजों पले बाल कंधों से कुछ ऊपर तक ही रह गए हैं। और उस के पतिदेव की चांद के चार बाल बिल्कुल सफाचट हैं। फैशन के लिए बाल कटा दिए होंगे इस बात पर विश्वास न होता था क्योंकि उसे अपने बालों से बड़ा प्यार था। पूछने पर पता चला कि वे एक धार्मिक स्थान के दर्शन के लिए गए थे और अन्य दानदक्षिणा के साथ ही अपने बाल भी वहा कर अर्पण कर देने का उन के यहां रिवाज है।

क्या करते हैं भगवान बालों का?

इसी तरह खाना उसे के यहां मेजकुरसी पर खाया जाता था। पर उस की सास नित्य ही थोड़ा सा गोबर अवश्य

ले आती क्योंकि उस के यहां खाना खाने का स्थान गोबर से लीपने का रिवाज है।

रूढ़ि का जन्म संयोग से

किसी काम को करने के बाद यदि कोई शुभ या अनुकूल घटना हो जाती है तो उस काम को करने का रिवाज सदा के लिए अपना लिया जाता है। कोई अनिष्ट हो जाने पर उस काम को कभी न करने का रिवाज बना दिया जाता है।

एक बार एक लड़की की गोद भरते समय उस की ननद ने उस से भविष्य में कभी भी नंगे हाथ रखने तथा काली, नीली और लाख की चुड़ियाँ पहनने के लिए मना कर दिया क्योंकि कई पीढ़ियों पहले उन के यहां एक स्त्री काली, नीली, और लाख की चुड़ियां पहनने से विधवा हो गई थी और कांच की लाल, हरी, पीली चूड़ियां पहनने वाली स्त्रियां सुहागिन रहीं (हालांकि उन के परिवार में काली, नीली और लाख की चूड़ियां पहनने वाली उक्त स्त्री का पति शराबी और क्षय रोग से पीड़ित था)।

वेसिरपैर के इन अंधे रिवाजों के प्रति विद्रोही उस लड़की ने शादी के बाद भी सदा या तो काली, नीली और लाख की चूड़ियां पहनीं या हाथ नंगे रखे, पर वह आज तक अपने गृहस्थ जीवन में सब प्रकार से सुखी है।

जलवायु का प्रभाव

किसी स्थान की जलवायु और खानपान आदि का रिवाजों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। मेरी एक राजस्थानी सहेली जो काफी पढ़ी लिखी है और अच्छी तरह से जानती है कि चेचक एक संक्रामक रोग है, देवी का कोप नहीं। शीतला पूजन के लिए नैवेद्य बनाने बैठी।

सब कुछ करने के बाद उसे याद आया कि इस अवसर पर जो रावड़ी बनाने का रिवाज है, वह तो बनी ही नहीं। (रावड़ी एक प्रकार का पेय है जो आटे का खमीर उठा कर बनाया जाता है और इस में हलका सा नशा भी होता है) और बाजरे का आटा भी नहीं है जिस से फौरन बना ली जाए।

उस की इस परेशानी पर मैं ने उस से कहा कि तुम तो जानती हो कि चेचक देवी का कोप नहीं बल्कि एक रोग है। फिर क्यों उसे पूज रही हो और यदि पूजना ही है तो जब कुछ तुम स्वयं खाओ उसी से पूज दो। रावड़ी ही क्यों और भी अनेक व्यंजन बनाए जा सकते हैं। राजस्थान में जब मूंग, मोठ, बाजरे और चने के सिवा और कुछ पैदा न होता था और यातायात के साधन भी पर्याप्त न होने के कारण बाहर से भी कुछ न आ पाता था तब उस समय जो कुछ लोगों को सुलभ था वहीं वे स्वयं खाते थे और देवताओं पर भी चढ़ाते थे। अब तो सभी चीजों सभी जगह मिल जाती हैं, कुछ भी बनाया जा सकता है।

मेरी हां में हां मिलाते हुए भी उस की परेशानी बनी रही और अंत में उस ने थोड़ा सा बाजरा बाजार से मंगा कर ग्राइंडर में पीसा और रावड़ी बनाई। उन दिनों वह इतनी अस्वस्थ थी कि ताजा सुपाच्य भोजन भी उसे कठिनाई से पच पाता था किंतु शीतला पूजा उस ने वही बासी और गरिष्ठ खाना खा कर की और इस तरह अपनी दशा और भी खराब कर ली।

यहां तो थोड़े से रिवाज केवल उदाहरणार्थ बताए गए हैं। हमारे समाज में तो इन व्यर्थ के रिवाजों का, जिन को करने से खर्च और परेशानी के सिवा कुछ लाभ नहीं होता। ऐसा महत्त्व है मानो समाज का ढांचा ही रिवाजों की नींव पर बना हो, एक भी रिवाज से चूकने पर जैसे पूरा समाज ही अस्तव्यस्त हो जाएगा।

इन रिवाजों को पंडित पुरोहितों ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए, देवी देवताओं के प्रकोप से अनिष्ट होने, पाप लगने या समाज में मानमर्यादा भंग होने का डर और शुभकार्य होने का लालच दिखा कर अनिवार्य बना दिया।

वस्तुतः किसी भी देश के रिवाजों पर जलवायु, रहनसहन और खानपान आदि का प्रभाव पड़ना तो स्वाभाविक है पर हर देश और काल में वही रिवाज करना अंधविश्वास है। लोगों को चाहिए कि विज्ञान के युग में वे अंधविश्वास और रूढ़ियों को छोड़ कर अपने समाज, देश और प्राणी मात्र के लिए कल्याणकारी कार्य कर के अपने जीवन को सफल और सार्थक बनाएं।

लोग कहते हैं
आन्दोलन, प्रदर्शन और जुलूस
निकालने से क्या होता है?
इससे सिद्ध होता है कि
हम जीवित हैं, अटल हैं
और मैदान से हटे नहीं है।

– प्रेमचन्द

ग्रहों की गति का विज्ञान

- विकास

ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के साथ ही पदार्थ और गति भी अस्तित्व में आये। पदार्थ से गति को अलग नहीं किया जा सकता है। पदार्थ के सभी रूप गति की अवस्था में रहते हैं। गति चाहे अणु-परमाणु के स्तर पर हो या ग्रहों-उपग्रहों के स्तर पर हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि गति हर जगह मौजूद होती है। परमाणु में इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन व न्यट्रॉन जैसे सूक्ष्म कण पाये जाते हैं। इन सूक्ष्म कणों को और भी छोटे हिस्सों में तोड़ते जायेंगे तो भी अन्तिम सूक्ष्म कण मिलेगा। वह भी गति की अवस्था में ही होगा। जब किसी पदार्थ को उच्चतम तापमान देते हैं, तब वह पदार्थ ठोस, द्रव, गैस व प्लाज़्मा की अवस्था से आगे बढ़कर प्रकाश में बदल जाता है। प्रकाश भी कणों से मिलकर बना है जो तरंग में गति करता हुआ आगे बढ़ता है। प्रकाश के आगे बढ़ने की गति सबसे अधिक तीव्र है। यह एक सेकेण्ड में तीन लाख कि.मी. की दूरी तय कर लेता है। प्रकाश की चाल से तुम 1.5 सेकेण्ड से पहले चाँद पर पहुँचे जाओगे।

पदार्थ के आन्तरिक जगत यानि अणु-परमाणु की गति को समझना जहाँ आसान है, वहीं ग्रहों, उपग्रहों व तारों की गति का विज्ञान थोड़ा जटिल है, फिर भी इसे समझने का प्रयास करते हैं। तुम तो जानते ही हो कि सौरमण्डल के आठ ग्रह सूर्य का चक्कर लगा रहे हैं। इनमें से कई बड़े ग्रहों के अपने उपग्रह भी हैं। सूर्य से दूरी के क्रम में चारो ग्रहों को आन्तरिक ग्रह कहते हैं। इसमें बुद्ध, शुक्र, पृथ्वी व मंगल आते हैं और बाकी चार भारी ग्रह हैं, जिसमें बृहस्पति, शनि, अरूण व वरूण आते हैं। इन आठों ग्रहों के बीच भी करोड़ों कि.मी. का फासला है। सभी ग्रह सूर्य के चारों और एक नियम का पालना करते हुए परिक्रमा कर रहे हैं। यह नियम गुरुत्वाकर्षण के कारण ही संभव होता है। गुरुत्वाकर्षन तारों व ग्रहों के ज्यादा द्रव्यमान (भार) व घनत्व की वजह से पैदा होता है। जो तारा व ग्रह भार में जितना ही अधिक होगा उसका गुरुत्वाकर्षण उतना ही अधिक होगा। सूर्य का भार सौरमण्डल के आठ ग्रहों से लाखों गुना अधिक है। पृथ्वी की तुलना में सूर्य का भार लगभग 3.5 लाख गुना और घनत्व 13 लाख गुना अधिक है। अधिक द्रव्यमान व घनत्व के चलते ही सूर्य अपने से छोटे ग्रहों, उपग्रहों को अपने चारों और परिक्रमा करने के लिए मजबूर कर देता है यानि उन्हें गतिमान रखता है। किसी ग्रह या उपग्रह को गति कहाँ से मिलती है, यह एक रहस्य जैसा लगता है।

पृथ्वी सूर्य के चारों और 4.5 अरब वर्ष पहले से चक्र लगा रही है। न यह सूर्य से टकरा रही है और न ही यह सूर्य की कक्षा से बाहर अन्तरिक्ष में जा रही है। कौन सी ताकत या ऊर्जा पृथ्वी और सूर्य के बीच काम कर रही है, जिससे इनमें आपसी सामंजस्य बना हुआ है। महान वैज्ञानिक न्यूटन से इस ऊर्जा या ताकत की वजह खोजने का प्रयास किया था लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली थी। आज से 100 साल पहले अल्बर्ट आइंस्टीन ने इस रहस्य को सुलझाया। आइंस्टीन ने बताया कि तारे या ग्रह अपने द्रव्यमान व घनत्व की वजह से समय (टाइम) व आकाश (स्पेस) में ढलान या झोल पैदा करते हैं, जिससे भारी ग्रह या तारे हल्के ग्रहों-उपग्रहों को अपने आकर्षशक्ति में बाँध लेते हैं। जैसे पृथ्वी अपने भार की वजह से चन्द्रमा को परिक्रमा करने को बाध्य कर देती है। अब सवाल यह उठता है कि आख़िर द्रव्यमान व घनत्व कैसे ग्रहों को गति प्रदान करता है। इसे एक प्रयोग से समझा जा सकता है।

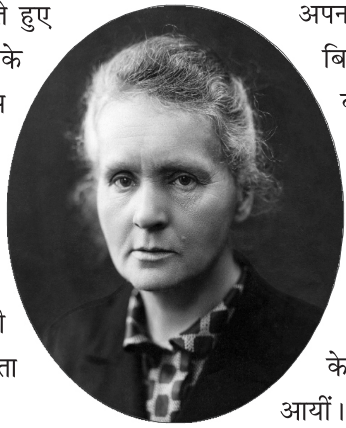
तुम एक ऐसी पारदर्शी पन्नी का इन्तज़ाम करो, जो तुम्हारी पढ़ने वाली मेज के आकार की हो। उस पन्नी के चार कोनों को रस्सी से बाँधकर अपने कमरे के चार कोनों से कसकर बाँध दो, जिससे पानी फर्श के समानान्तर हवा में तन जाये। इस तनी पन्नी पर यदि एक भारी बॉल या गेंद रख दी जाये तो वह लुढ़क कर पन्नी के बीच में आ जायेगी। इससे पन्नी के किनारों पर ढलान पैदा होगी और बीच में झोल आ जाएगा। दूर से देखने पर गेंद हवा में तैरती सी नज़र आयेगी क्योंकि पन्नी पारदर्शी है। अब इस पन्नी के किनारों पर कंचे की गोली रखो। गोली ढलान से लुढ़ककर घूमते हुए झोल में गिर जायेगी। कुछ ऐसा ही हमारे ग्रहों, उपग्रहों की गति में भी होता है। ब्रहमाण्ड में दिखने वाला आकाश (स्पेस) भी पारदर्शी पन्नी की तरह व्यवहार करता है। जब आकाश रूपी इस पन्नी पर किसी भारी ग्रह या तारे का द्रव्यमान दबाव डालता है तो भार के स्थान पर आकाश में ढलान या झोल पैदा हो जाता है। जैसे गोली लुढ़ककर पन्नी के झोल **शेष पृष्ठ 29 पर**

मैरी क्यूरी का याद में

– श्वेता

बच्चो, तुमने अपनी विज्ञान की किताबों में अवश्य ही मैडम क्यूरी का नाम पढ़ा होगा। तुम यह भी जानते होंगे कि मैडम क्यूरी ने रेडियम और पोलोनियम नामक दो रेडियोएक्टिव पदार्थों की खोज की थी, पर क्या तुम जानते हो कि इस महत्वपूर्ण खोज को अंजाम देने वाले मैडम क्यूरी का जीवन कैसा था?

मान्या स्कोडोवस्का (जो बाद में मैडम क्यूरी के नाम से प्रख्यात हुई) का जन्म 7 नवम्बर 1867 को पोलैण्ड में हुआ था। उस समय पौलैण्ड पर रूस के ज़ार का शासन था। मान्या के माता–पिता दोनों ही अध्यापक थे। मान्या अपने पिता की तरह बुद्धिमान थी। माँ के साथ रहते हुए बचपन से ही उनमें विज्ञान के प्रयोगों के प्रति दिलचस्पी जागी थी। मान्या जब दस वर्ष की थी, तब उनकी माँ का निधन हो गया। ज़ारशाही–विरोधी विचारों के कारण उनके पिता को अध्यापक पद से हटाया गया। पिता की नौकरी छूटने से मान्या का परिवार काफ़ी प्रभावित हुआ। बच्चों की परवरिश और उनकी शिक्षा मान्या के पिता की सीमा से बाहर हो गयी।



पिता की तरह ही मान्या भी जनता पर जुल्म ढाने वाली ज़ारशाही से बेहद नफ़रत करती थी। मान्या के स्कूल के रास्ते में किसी ज़ारशाही–समर्थक पौलेण्ड निवासी की पत्थर की प्रतिमा पड़ती थी। मान्या का यह नियम था कि वह स्कूल जाते समय उस प्रतिमा पर एक बार ज़रूर थूक देती थी। यदि किसी दिन भूल से वह आगे बढ़ जाती, तो याद आने पर वापस आकर अपने इस रोज़ के नियम को पूरा करती थी। यही नहीं, मान्या स्कूल में ज़ारशाही समर्थक अपनी एक अध्यापिका को भी मुँहतोड़ जवाब देने से कभी नहीं चूकती थी।

पिता की नौकरी छूटने पर परिवार की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि बच्चों को मनचाही शिक्षा मिल सके। मान्या की बड़ी बहन ब्रोन्या उच्च शिक्षा के लिए पेरिस जाना चाहती थी और मान्या की भी यही इच्छा थी। ऐसे हालात में मान्या ने अपनी बहन को सुझाव दिया, ''जब तक तुम अपनी पढ़ाई करोगी तब तक मैं नौकरी करूँगी और जब तुम्हारी पढ़ाई ख़त्म हो जायेगी तब तुम मेरी मदद करना।'' योजना को अमल में लाया गया। मान्या धनी परिवारों में जाकर शिक्षिका का काम करती रही और उस दौरान मान्या की बड़ी बहन ब्रोन्या पेरिस में पढ़ती रही। ब्रोन्या ने चिकित्सा शास्त्र में उपाधि हासिल कर ली। इसके बाद अब शिक्षा प्राप्त करने की बारी मान्य की थी।

मान्या ने पेरिस विश्वविद्यालिय में दाखिला प्राप्त किया और विज्ञान विषय चुना। इस दौरान मान्या ने काफ़ी कठिन जीवन बिताया। वह डबलरोटी, मक्खन और चाय खाकर अपना पूरा दिन बिताती और कभी–कभी तो पूरा दिन बिना खाये बिता देती। कड़ाके की सर्दियों में भी बहुत थोड़े से कोयले से काम चला लेती। अब आग बुझ जाती तो भी वह अपनी किताबों में मगन रहती। अपने इन कष्टों को मान्या ने अपनी बड़ी बहन से छिपा रखा था। जब ब्रोन्या को मालूम हुआ तो वह मान्या को अपने पति के साथ मिलकर अपने घर ले आयीं, पर कुछ दिनों के बाद मान्या फिर अपनी पुरानी जगह वापस लौट आयीं। मान्या ने खूब मन लगाकर कई विषयों का अध्ययन किया पर विज्ञान के प्रयोगों में उनकी ख़ास रूचि थी।

वर्ष 1894 में मान्या की भेंट पियरे क्यूरी नाम के एक वैज्ञानिक से हुई जिनसे बाद में मान्या ने विवाह किया। मान्या और पियरे दोनों ही एक साधारण से फ्लैट में रहने लगे और वैज्ञानिक प्रयोगों में जुट गये। अब मान्या को अपने आगे के वैज्ञानिक अनुसन्धानों का विषय तय करना था। (उनका ध्यान हेनरी बेक्वेरल (एक फ्रांसीसी भौतिक वैज्ञानिक) की खोज की तरफ गया। बेक्वेरल ने यह पता लगाया था कि यूरेनियम धातु में से कुछ अदृश्य विकिरणें (रेडियेशन) निकलती हैं।

मान्या ने यूरेनियम पर प्रयोग को आगे बढ़ाया और पता लगाया कि इन विकिरणों का स्रोत युरेनियम के नाभिक (न्यूक्लियस) में है। इस परिघटना को उन्होंने रेडियोएक्टिविटी का नाम दिया। बच्चो, क्या तुम्हें पता है कि यूरेनियम नाम का पदार्थ प्रकृति में कहाँ और कैसे मिलता है? जिस तरह लोहा,

ताँबा, सोना या फिर अन्य धातुएँ धरती की गहराइयों में अयस्कों (ओर्स) के रूप में दबी रहती हैं और बाद में वैज्ञानिक विधि से उनमें से धातुएँ अलग की जाती हैं, उसी तरह युरेनियम **पिचब्लेण्ड** नाम के अयस्क के रूप में धरती के अन्दर मौजूद रहता है।

प्रयोग के दौरान मान्या को यह अहसास हुआ कि पिचब्लेण्ड में यूरेनियम के अलावा कोई और विकिरणों वाले पदार्थ भी होने चाहिए। बस फिर क्या था, मान्या और उनके पति, पियरे क्यूरी ने मिलकर आठ सालों की जी-तोड़ मेहनत के बाद इन दो नये पदार्थों को खोज निकाला, जिसे रेडियम और पोलोनियम के नाम से जाना जाने लगा। हालाँकि नये तत्वों को खोजना कितना मुश्किल था, इसका अन्दाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि 1000 किलो पिचब्लेण्ड में रेडियम की मात्रा 1 ग्राम का सातवाँ हिस्सा होती है।

क्यूरी दम्पत्ति ने जिस रेडियम की खोज की, उसे कैंसर के उपचार के लिए ज़रूरी समझा गया। बहुत-से देश इसे तैयार करने की योजनाएँ बना रहे थे, पर इसे बनाने का तरीका सिर्फ क्यूरी दम्पत्ति को ही पता था। इस विधि को जानने की ख़ातिर उनके पास अमेरिकी तकनीशियनों का पत्र आया। क्यूरी दम्पत्ति के पास दो रास्ते थे। पहला यह कि वे किसी भी तरह के लाभ की परवाह किये बग़ैर अपनी विधि सारे संसार के सामने प्रकट करके मानवता की सेवा करें और दूसरा कि वे अपने आपको 'रेडियम के मालिक' कहलवाकर विधि को पेटेण्ट करवाकर लाभ कमायें। उन्होंने पहला रास्ता चुना। इस तरह हम देख सकते हैं कि क्यूरि दम्पत्ति ने मानवता की सेवा को प्राथमिकता देकर एक सच्चे वैज्ञानिक का कर्तव्य निभाया।

वर्ष 1903 में मान्या यानी मैडम क्यूरी को अपने पति और वैज्ञानिक हेनरी बेक्वेरल के साथ मिलकर भौतिकी के लिए नौबेल पुरस्कार दिया गया और इस प्रकार मैडम क्यूर नोबेल पुरस्कार पाने वाली प्रथम महिला बनी। बाद में उन्हें वर्ष 1911 में रसायन शास्त्र के लिए भी नोबेल पुरस्कार मिला। वर्ष 1906 में पियरे क्यूरी की मृत्यु ने उन्हें बुरी तरह प्रभावित किया, पर उनका काम पहले की ही तरह चलता रहा। मैडम क्यूरी अपने जीवन के अन्तिम दिनों तक काम करती रहीं।

बच्चो, तुम्हें यह जानकार हैरानी होगी कि मैडम क्यूरी की मृत्यु 4 जुलाई 1934 को **एप्लास्टिक एनीमिया** नाम की बीमारी के कारण हुई जो लम्बे समय तक विकिरणों के सम्पर्क में रहने के कारण होती है। उन्हें अपने पति पियरे के साथ दफ़नाया गया।

पृष्ठ 27 का शेष में पहुँच जाती है, वैसे ही कम भार वाले ग्रह व उपग्रह भारी भार वाले सूर्य या ग्रह द्वारा पैदा की गयी ढलान में लुढ़कने लगते हैं। परन्तु उनका अपना गुरुत्वाकर्षण बल भी काम करता है। इस प्रक्रिया में एक सन्तुलन, एक ऐसा सामंजस्य पैदा होता है जिससे हल्के ग्रह व उपग्रह झोल में गिरने की जगह भारी ग्रहों व सूर्य का चक्कर लगाने लगते हैं। इस तरह सौर मण्डल के सभी ग्रह सूर्य में गिरने की जगह उसकी परिक्रमा करते हैं।

अब आओ देखते हैं कि ग्रहों द्वारा सूर्य की परिक्रमा करने की गति में अन्तर क्यों हैं। सौरमण्डल के किसी ग्रह की परिक्रमा करने की गति सूर्य से उसकी दूरी पर निर्भर करती हैं। इसे हम चुम्बक के उदाहरण से समझ सकते हैं। एक बड़ा चुम्बक छोटे चुम्बक को अपनी ओर खींच लेता है। छोटे चुम्बक को दूर करते जाने पर बड़े चुम्बक के चुम्बकत्व का प्रभाव या आकर्षण घटता जाता है। ठीक उसी तरह सौरमण्डल के जो ग्रह सूर्य के जितने नज़दीक होते हैं व उतने ही तीव्र आकर्षण के कारण तीव्र गति से सूर्य की परिक्रमा करते हैं। सूर्य के सबसे नज़दीक परिक्रमा करने वाला ग्रह बुद्ध है। यह केवल 88 दिन में ही सूर्य का एक चक्कर लगा लेता है। वहीं सूर्य से पृथ्वी की दूरी 15 करोड़ कि.मी. होने से यह 365 दिन में सूर्य का चक्कर लगा पाती है। जबकि वरूण (नैप्चून) सूर्य से 4.5 अरब कि.मी. की दूरी पर परिक्रमा कर रहा है। इतनी अधिक दूरी पर सूर्य का गुरुत्वाकर्षण बल भी बहुत कम लगता है जिससे इसकी गति बहुत कम हो जाती है। इसलिए वरूण ग्रह को सूर्य का चक्कर लगाने में 165 वर्ष लग जाते हैं।

अभी कुछ ही महीने पहले ग्रहों की गति से जुड़ी घटना सामने आयी थी, जिसे खगोल विज्ञान ने महान संयोजन (ग्रेट कन्जंक्शन) कहा। इसी दिन सौरमण्डल के दो बड़े ग्रह बृहस्पति व शनि एक दूसरे के बहुत नज़दीक आ गये थे। वे इतने नज़दीक दिख रहे थे जैसे कि दो तारे आपस में जुड़ गये हों। हालाँकि इन ग्रहों की वास्तविक दूरी करोड़ों कि.मी. थी। यह नज़ारा भी ग्रहों की गति का ही कमाल था। 17 जुलाई, 1623 में इस संयोजन को जबकि बृहस्पति और शनि बहुत करीब आ गये थे, पहली बार गैलीलियो ने देखा था। यूँ तो हर 20 साल में बृहस्पति और शनि एक दूसरे के करीब हो जाते हैं लेकिन 21 दिसम्बर 2020 को वे इतने नज़दीक आ गये थे कि उसे महान संयोजन कहा गया।

मार्क्स की 'पूँजी' पर आधारित पाठ

बच्चों के लिए अर्थशास्त्र

– रंगनायकम्मा



वस्तु को तेजी से बनाएँ तो? अगर सुस्ती से बनाएँ तो?

कुछ लोग तेजी से काम करते हैं, तो उसी काम को दूसरे लोग बड़ा धीमे-धीमे करते हैं। अगर कोई व्यक्ति किसी चीज को चुस्ती से कम समय में बना दें, तो क्या उस चीज का मूल्य कम हो जायेगा? कोई दूसरा व्यक्ति अगर उसी चीज को सुस्त तरीके से बनाकर ज्यादा समय लगाये, तो क्या उसमें ज्यादा मूल्य होगा? नहीं, ऐसा हो सकता।

घड़े एक ही परिवार नहीं बनाता। कुछ और परिवार भी यह काम करते हैं। मान लेते हैं कि सभी कुम्हारों को घड़ा बनाने के लिए आम तौर पर 2 घण्टे लगते हों। इतना समय घड़े बनाने के काम का एक माप है। कोई व्यक्ति थोड़ा ज्यादा समय ले सकता है, तो कोई और व्यक्ति थोड़ा कम समय ले सकता है। मगर इस काम के लिए आम तौर पर जितना समय लगता हो, वही उस चीज का मूल्य होता है। मान लें कि घड़ा बनाने के लिए आम तौर पर लगने वाला समय 2 घण्टे हो। इसी तरह का घड़ा बनाने के लिए किसी को अगर 6 घण्टे लग जायें, तो उस घड़े का मूल्य ज्यादा नहीं होगा। इन 6 घण्टों को 2 ही घण्टे गिना जायेगा। कोई और व्यक्ति अगर उसी घड़े को एक घण्टे के अन्दर बना ले, तो घड़े का मूल्य कोई कम नहीं होगा। इसे भी 2 ही घण्टे गिना जायेगा।

मान लेते हैं कि जूते बनाने वाला अपनी जूतों की जोड़ी साथ लेकर घड़े की तलाश में निकल पड़ा हो। और कुम्हार मूर्खतावश कह दे कि ''अब मैं अपना घड़ा पहले की तरह नहीं दूँगा। इसे बनाने के लिए पूरे 6 घण्टे लगे हैं।''

तो जूते बनाने वाला आश्चर्य के साथ पूछ बैठेगा, ''यह क्या साधारण घड़ा नहीं है? इस पर कोई नक्काशी वगैरह तो नहीं है? क्यों लगा इसमें ज्यादा समय?''

''क्या कहूँ, इतना समय लगा तो है। क्या कह सकता हूँ?''

''वह देखो, वह घड़ा जो आप इस्तेमाल कर रहे हैं, नया लगता है। इसमें कितना समय लगा?''

''उसे तो 2 ही घण्टे लगे थे। पर इसे 6 घण्टे लगे हैं।''

''अगर ऐसा है, तो मुझे यह वाला नहीं चाहिए। इसे तुम रख लो और मुझे वही घड़ा दे दो'', जूते बनाने वाला यह कहेगा।

कुम्हार अवाक रह जायेगा और मजबूर होकर उसकी बात मान लेगा। ''ठीक है, तुम ले जाओ वह घड़ा और मुझे जूतों की जोड़ी दे दो।'' उसे अपनी भूल का अहसास हो जायेगा।

किसी वस्तु को बनाने के लिए लोग औसतन जितना समय लगाते हैं उसी को उस वस्तु का समय माना जाता है। लेकिन मूल्य न तो उस वस्तु को धीमे-धीमे बनाते हुए ज्यादा समय लगाने से बढ़ता है और न ही फुर्ति से बनाने पर घटता है।

कुदरती पदार्थ :

किसी 'वस्तु' को बनाने के लिए सिर्फ इनसानों का श्रम ही काफी नहीं होता। कुदरती पदार्थ भी जरूरी होते हैं। किसी वस्तु को बनाने की शुरूआत किसी न किसी कुदरती पदार्थ से ही होती है।

घड़ा बनाने के लिए पहले चिकनी मिट्टी होनी चाहिए। इसे हम धरती से खोद निकाल सकते हैं। धरती कुदरती पदार्थ है। यह किसी के श्रम से नहीं होती। ऐसे किसी कुदरती पदार्थ का कोई विनिमय-मूल्य नहीं होता। धरती में खुदाई करने के लिए इस कुदरती पदार्थ पर किसी मात्रा में श्रम करना पड़ता है। धरती की खुदाई करने पर जो मिट्टी निकल आती है उस मिट्टी का ढेर कुदरती पदार्थ नहीं होता। इसलिए कि इस मिट्टी को निकालने में कोई श्रम खर्च हुआ होता है। मिट्टी जब वैसी ही हो जैसे कुदरत में पायी जाती हो, मानो कुदरत की ही देन हो, सिर्फ तभी वह कुदरती पदार्थ होती है। जैसे ही उस पर कोई श्रम किया जाता है वह कुदरती पदार्थ नहीं रह जाती। खोद निकाली जाने वाली मिट्टी का कोई मूल्य तो होगा ही। **मिट्टी पर जितना श्रम लगा हो वही उसका मूल्य होता है।** यह मिट्टी

(चिकनी मिट्‌टी) अब घड़ा बनाने के लिए जरूरी कच्चा माल बन सकती है।

औजार के अन्दर का श्रम :

मिट्‌टी खोद निकालने के लिए कोई न कोई औजार भी जरूरी होता है। यह औजार पहले के श्रम से बना हुआ होता है। मिट्‌टी खोदने के लिए इस औजार की जरूरत होने का मतलब यह है कि इस औजार को बनाने में लगा श्रम इस मिट्‌टी की खुदाई के लिए जरूरी है। फावड़ा, हल या सब्बल जैसे औजार देखिए। ऐसे किसी औजार से अगर हम घण्टा भर कोई छोटा-मोटा काम करें, तो क्या यह घिस जायेगा? नहीं। इस तरह के औजार सालोसाल चलते हैं। समय-समय पर धार तेज करनी पड़ती है और मुरम्मत करते रहना पड़ता है। कुछ समय बाद यह धार तेज करने पर भी काम नहीं कर पाती। हर औजार का अपना सीमित जीवन-काल के दौरान उसका मूल्य निश्चित मात्रा में उससे बनने वाली वस्तुओं के साथ थोड़ा-थोड़ा करके जुड़ता चला जाता है।

मान लें कि किसी हल का मूल्य 20 घण्टे श्रम हो और अपने जीवन-काल में उसका प्रयोग 40 एकड़ जमीन जोतने के लिए किया जाता हो, इसका मतलब यह होगा कि 1 एकड़ जमीन की जुताई में आधे घण्टे श्रम का मूल्य जुड़ता है। एक एकड़ जमीन पर उगाये जाने वाले अनाज में हल के इस्तेमाल से यही आधे घण्टे का श्रम जुड़ता होगा। अनाज की फसल को उगाने के लिए इस्तेमाल होने वाले दूसरे औजारों, बैलों और जोतने वाले व्यक्ति के श्रम अलग-अलग प्रकार के होते हैं।

अगर जमीन से मिट्‌टी खोद निकाली जाये, तो खोदी जाने वाली उस मिट्‌टी का मूल्य खुदाई के श्रम और औजार बनाने में लगे श्रम का कुल योग होगा।

अब इस खोदी हुई मिट्‌टी से घड़ा बनाना हो, तो चिकनी मिट्‌टी तैयार करने के लिए पानी की जरूरत होगी। दूर एक तालाब है। यह खुदाई से बना हुआ तालाब नहीं है। इसका पानी कुदरती है। ऐसा पानी जब तालाब के अन्दर हो, तो उसका कोई मूल्य नहीं होता। उसे तालाब से बाहर निकालने के लिए कोई श्रम करना पड़ता है। यह श्रम करने के लिए बर्तन-रूपी औजार की जरूरत होती है। यह औजार भी किसी श्रम से बना होता है। तालाब से पानी निकाला जाये, तो इस पानी को ढोने के श्रम और उस औजार को बनाने के श्रम का कुल योग होगा पानी का मूल्य। चिकनी मिट्‌टी बनाने के लिए मिट्‌टी के साथ पानी मिलायें, तो वह मिट्‌टी और पानी, दोनों कच्चे माल हो जाते हैं। इस कच्चे माल से घड़ा बनाने के लिए किसी खास मात्रा में श्रम करना पड़ता है। यह श्रम करने के लिए कोई न कोई औजार जरूरी होता है। हम अगर मिट्‌टी की खुदाई से शुरू करें, तो श्याम जिस-जिस श्रम को करके घड़ा बनाता है, उसमें औजारों को बनाने के लिए लगे श्रम को जोड़ा जाये, तो यही योग घड़ा बनाने के लिए जरूरी 'कुल श्रम' होगा। यही कुल श्रम इस घड़े का मूल्य होगा। इस कुल श्रम को यदि 2 घण्टे मान लें, तो घड़े का मूल्य 2 घण्टे होगा। किसी भी चीज का मूल्य इस तरह तय होता है।

सवाल और जवाब

एक दर्जी किसी की कमीज सिलता है और पाता है 1 सेर चावल (1 सेर = 10 छटांक)। पार्वती आधे दिन में 1 कमीज सिल पाती हैं। उसी तरह की कमीज सिलने के लिए सावित्री को पूरा दिन लग जाता है। क्या दोनों का श्रम समान होगा? किसको कितना चावल मिलना चाहिए ?

जवाब : पार्वती जितना श्रम-समय लगाती है सावित्री उससे दुगुना श्रम-समय लगाती हैं। लेकिन दोनों के श्रम को एक ही तरह से मापना होगा। दोनों ने एक ही कमीज सिली है। दोनों को समान मात्रा में चावल मिलना चाहिए। कोई व्यक्ति अगर सुस्त गति से काम करे, तो उसके श्रम-समय के एक हिस्से का कोई मूल्य नहीं होगा। लेकिन इस उदाहरण में हमें यह नहीं बताया गया है कि दोनों में से किसका श्रम समय औसत श्रम-समय है। अगर पार्वती का श्रम-समय औसत समय हो, तो सावित्री को उतने का चावल मिलेगा। अगर सावित्री का श्रम-समय औसत हो, तो पार्वती को इतने का चावल मिलेगा।

(स्रोत : किताब ''बच्चों के लिए अर्थशास्त्र'')

हमारे देश में ज्यादातार लोगों का खून सिर्फ़
धर्म के नाम पर ही खौलता है,
गरीबी, मंहगाई, भूखमरी, बेरोज़गारी,
अशिक्षा और शोषण पर कभी नही खौलता.?

- भगत सिंह

अंधविश्वास के कारण बलि की घटनाएं : ग्रामीण अंधविश्वास में न पड़ें



डॉ. दिनेश मिश्र

पिछले दिनों बलरामपुर जिले के एक व्यक्ति कमलेश नगेशिया ने अपने 4 वर्ष के बच्चे की बलि दे दी। उसके कुछ दिनों पहले नवरात्रि में भी कोरिया जिले में एक धनेश्वर नामक बालक की बलि का मामला सामने आया था जिसके रिश्तेदारों ने ही, पिछले सप्ताह ही सरगुजा के शंकरगढ़ के एक व्यक्ति ने एक झाड़ फूंक करने वाले बैगा की यह मानकर हत्या कर दी, कि वह झाड़ फूंक से उसको ठीक नहीं कर पा रहा है। अंधविश्वास के कारण यह तीनों हत्या की घटनाएं अत्यंत दुखद है। ग्रामीणों को अंधविश्वास नहीं करना चाहिए एवं कानून को हाथ में नहीं लेना चाहिए। अंधविश्वास में पड़ कर व्यक्ति मानसिक रुप में असंतुलित हो जाता है और वह मिथकों पर पूरी तरह भरोसा करने लगता है। कही सुनी किस्से कहानियां, भ्रामक खबरें, अफवाहें उसे और भी भ्रमित कर देती हैं और वह अपराध कर बैठता है।

लोगों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को विकसित करने की आवश्यकता है जिससे लोग सुनी सुनाई घटनाओं, अफवाहें और भ्रामक खबरों पर भरोसा ना करें और अंधविश्वास में ना पड़े। कुछ मामलों में व्यक्ति किसी इष्ट देवी, देवता का सपना आने और सपने में बलि मांगने की बात भी कहते हैं और कहते हैं कि उन्होंने उनके आदेश पर किसी की बलि दे दी है जबकि लोगों को यह सोचने की आवश्यकता है कि किसी की जान लेकर कर कोई भी व्यक्ति सफल नहीं हो सकता और उसे अपराध करने के करण अंतत: जेल जाना पड़ता है।

अंधविश्वास के कारण जो व्यक्ति मानसिक उद्वेग में चला जाता है तब वह कई बार स्वयं के अंदर किसी अदृश्य शक्ति के प्रवेश होने की बात भी करता है तथा वह किसी के सपने में आने या किसी के आदेश देने या कानों में आवाज सुनाई पढ़ने जैसी बातें भी करता है जबकि यह एक प्रकार का मानसिक विचलन का ही कारण है। यह एक प्रकार का मानसिक असंतुलन का प्रतीक है और बहुत सारे लोग बहुत संवेदनशील होते हैं और वह भावावेश में आकर कानून हाथ में लेते हैं, इनमें से कुछ लोग सार्वजनिक रुप से भी असंतुलित व्यवहार प्रकट करते हैं जैसे झूमना, बड़बड़ाना, मारना, पीटना आदि। ऐसे में किसी चिकित्सक को किसी को दिखाया जाए, उसका उपचार हो, उसकी सभी तरह से काउंसलिंग की जाए तो व्यक्ति ठीक हो जाता है और समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है

अध्यक्ष (अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति)

19 मई 2024 को कुरुक्षेत्र में तर्कशील सोसायटी हरियाणा की बैठक

तर्कशील सोसायटी हरियाणा की द्विमासिक बैठक 19 मई 2024 को डाक्टर ओम प्रकाश ग्रेवाल अध्ययन संस्थान, कुरुक्षेत्र में सम्पन्न हुई जिसमें राज्य भर से पहुंचे कार्यकर्ताओं व राज्य कार्यकारिणी सदस्यों ने भाग लिया। इस बैठक में विशेष रूप से आमंत्रित डाक्टर राजा राम हंडियाया, हरिंदर लाली एडवोकेट ने शिरकत की।

मंच संचालन करते हुए बैठक के एजेंडे को राज्य सचिव बलजीत भारती ने विचार विमर्श के लिए बैठक में रखा जिसमे पत्रिका ''तर्कशील पथ'' की संख्या बढ़ाने, सोसायटी की गतिविधियों जिसमे इकाईयों का गठन, तर्कशील भवन निर्माण आदि पर चर्चा में सदस्यों ने भाग लिया जिसमे गुरमीत अम्बाला, डाक्टर परमानन्द, जयदेव नम्बरदार, मान सिंह, परविंदर, बलदेव महरोक, आत्मा सिंह आदि ने विचार रखे। हरिंदर लाली एडवोकेट ने अंधविश्वसों के विरुद्ध कानून बनाने के पँजाब में किए जाने वाले प्रयासों को सांझा किया। साथ ही हरियाणा में भी इस दिशा में प्रयास करने की आवश्यकता पर बल दिया। राजा राम हंडियाया ने हरियाणा में अपने कार्यकाल के दौरान किए गए तर्कशील कार्यों की विस्तार से चर्चा की और नए जुड़े साथियों को बहुत ज्यादा प्रयास इस दिशा में करने की बात कही ताकि हरियाणा के सभी जिलों में तर्कशील एक्टीविटी की जाती रहे।

रिपोर्ट– गुरमीत अम्बाला

भारत में अंधविश्वास की जड़ें

नवजोत पटियाला

अंधविश्वास भारतीय समाज के रोम-रोम में समाया हुआ है, कभी-कभी यह स्पष्ट रूप से दिखता है और कभी-कभी कम स्पष्ट रूप में। दैवीय प्रकोप, अदृश्य शक्तियां, अलौकिक शक्तियों में विश्वास, झाड़-फूंक, बाबाओं से प्रश्न पूछना, मनोकामना पूर्ति के लिए विशेष दिनों में जानवरों को भोजन देना, ताबीज बनवाने, विशेष दिनों में मांसाहारी भोजन न करना, विशेष दिनों में केश साफ न करना, जादू-टोने में विश्वास आदि अंधविश्वासों की अभिव्यक्ति के अनेक रूप हैं जो हमारे समाज में आए दिन देखने को मिलते हैं।

प्यू रिसर्च सेंटर के एक नमूना सर्वेक्षण से पता चला है कि भारत की लगभग आधी आबादी स्वर्गदूतों और भूतों में विश्वास करती है, 38% पुनर्जन्म में, 76% कर्म के सिद्धांत में और 70% भाग्य में विश्वास करती है। ये मान्यताएँ सभी धर्मों के लोगों में पाई जाती हैं। इसके अलावा और भी कई सूक्ष्म रूपों में अंधविश्वास हमारे समाज में जड़ें जमाये हुए हैं। एक मिथ चलती है कि निरक्षर लोग अन्धविश्वासी होते हैं साक्षर नहीं, लेकिन तथाकथित पढ़े-लिखे लोगों, प्रोफेसरों, डॉक्टरों, वैज्ञानिकों, आफीसर्ज आदि में भी अंधविश्वासों की जड़ें बहुत गहरी हैं। निरक्षर को तो समझाया भी जा सकता है इन कथित पढ़े लिखे लोगों ने तो अपने अन्धविश्वासों को कुतर्कों से मजबूत कर लिया होता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई छात्र किसी परीक्षा में बहुत अच्छा प्रदर्शन करता है, तो कोई उसे परीक्षा में उपयोग किए गए विशेष पैन साथ जोड़ कर देखने लगता है और फिर उसी पैन के साथ अन्य सभी परीक्षाएं देता है। विद्यार्थी तो क्या, उनके 'बुद्धिमान' शिक्षक भी ऐसी अनेक मान्यताओं के बोझ से दबे हुए हैं। मेरी परिचित एक अध्यापिका का जब भी प्रमोशन या अन्य महत्वपूर्ण कार्य के संबंध में कोई इंटरव्यू होता है तो वह एक खास रंग के कपड़े पहनकर जाती है, क्योंकि उसके अनुसार यही रंग पहनने से उनका काम बन जाता है। लक्की नम्बर, लक्की कपड़े आदि अनेक धारणाएं बनाई जाती हैं। बहुत से वैज्ञानिक, डॉक्टर अन्य प्रोफेशनल भी अपना काम शुरू करने से पहले अनुष्ठान करते दिखाई दे जाते हैं। 2019 में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन के एक पुराने अधिकारी ने बताया था कि संगठन के कई वैज्ञानिक न केवल रॉकेट को अंतरिक्ष में लॉन्च करने से पहले विभिन्न अनुष्ठान करते हैं, बल्कि रॉकेट को अंतरिक्ष में लॉन्च करने के बाद भी ज्योतिष आदि के अनुसार कर्मकांड करते हैं। 'शुभ समय' जैसी मान्यताएं भी चलन में हैं। राजनीतिज्ञों के हाल तो और भी सोचनीय हैं। कई नेता लोग विरोधियों के लिए जादू-टोना करने के लिए तांत्रिकों, बाबाओं के पास जाते रहे हैं। दीगर बात यह है कि अन्धविश्वासों को वैज्ञानिक तौर पर सही साबित करने की कोशिश भी जोरों पर है।

अंधविश्वासों और उन पर आधारित सभी रीति-रिवाजों को एक ही मानना भी भूल होगी। सभी परीक्षाएँ एक ही कलम से देना, महत्वपूर्ण अवसरों पर एक ही रंग के कपड़े पहनना आदि अंधविश्वासों की अभिव्यक्तियाँ तार्किक और वैज्ञानिक चेतना के निर्माण में बाधा अवश्य हैं, लेकिन इनमें दूसरे को हानि नहीं पहुंच रही। इसके अलावा ऐसे अंधविश्वास भी हैं जिनके कारण दूसरों को आर्थिक, सामाजिक और यहां तक कि जान का नुकसान भी हो सकता है। उदाहरण के लिए, अक्सर देखा जाता है कि समाज में किसी पुरुष या महिला का सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाता है, क्योंकि लोगों के अनुसार वह काला जादू करती है, कुछ इलाकों में डायन प्रथा अभी भी कायम है। इन्ही में अंधविश्वासों की पराकाष्ठा का सबसे बुरा रूप मानव बलि है। ऐसी घटनाएं भी सुनने को मिल जाती हैं। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो उन लोगों, विशेषकर महिलाओं की संख्या के बारे में कोई आंकडे एकत्र नहीं करता है, जो मानव बलि के कारण मारे गए हैं या भूत-प्रेत के वश में होने का संदेह है। 2013 से नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो ने इनसे जुड़े आंकड़े इकट्ठा करना शुरू किए थे, लेकिन ये आंकड़े सिर्फ दो साल तक ही जुटाए जा सके। इन दो सालों में ही ऐसी हत्याओं के हजारों मामले सामने आये। इसके बाद ब्यूरो ने इस तरह का डेटा इकट्ठा करना बंद कर दिया। इतना ही नहीं, भारत के अधिकांश राज्यों में काले जादू या भूत-प्रेत के नाम पर हत्या, नरबलि आदि के खिलाफ कोई प्रभावी कानून नहीं है, जहां कानून है, वहां उसे लागू करने की पर्याप्त व्यवस्था भी नहीं है। इस संबंध में आमतौर पर जितनी खबरें सुनने को मिलती

हैं, उससे यह अंदाजा आसानी से लगाया जा सकता है कि इन कारणों से हर साल हजारों लोगों और विशेषकर महिलाओं को अपमान, यातना सहनी पड़ती है और हजारों लोग मारे जाते हैं।

इस पूरे घटनाक्रम की मौजूदा स्थिति को समझने के लिए थोड़ा ऐतिहासिक सफर करना जरूरी है।

मानव समाज में वर्गों के जन्म से पहले, आदिम समाज में, जब मानव जीवन मुख्य रूप से शिकार और कंद मूल इकट्ठा करने पर आधारित था उस समय ही मिथकों, विभिन्न अनुष्ठानों की शुरुआत हो चुकी थी। मनुष्य तब पूरी तरह से प्राकृतिक शक्तियों और प्रक्रियाओं के अधीन था। हवा चलने, अँधेरा छाने, वर्षा होने आदि के पीछे वह किसी अदृश्य शक्ति की सक्रियता देखता था।

इतना ही नहीं शिकार और कंद मूल (भोजन) की उपलब्धता की अनिशिचतता, मनुष्य द्वारा उनकी प्राप्ति या अप्राप्ति के पीछे भी अदृश्य शक्तियों की सक्रियता देखता था। प्राकृतिक शक्तियों के सामने अधिकतर असहाय होने के कारण इस समय मनुष्य आत्माओं को भी अधिकतर प्राकृतिक प्रक्रियाओं और जानवरों से संबंधित मानता था। प्रकृति की प्रक्रियाओं, पशु-पक्षियों आदि पर अपना आधिपत्य स्थापित करने की इच्छा से विभिन्न अनुष्ठान, आदि किए जाते थे, क्योंकि मनुष्य इन चीजों के पीछे के विज्ञान को नहीं समझ पाया था। कई अनुष्ठानों में, संपूर्ण शिकार गतिविधि की नकल की जाती थी और यह माना जाता था कि अगली बार जब कोई शिकार करने जाएगा, तो शिकार पकड़ा जाएगा। इस समय इन मिथकों, अनुष्ठानों आदि की महत्वपूर्ण भूमिका थी क्योंकि ये मिथक, अनुष्ठान आदि प्राकृतिक घटनाओं को समझने की दिशा में पहला कदम थे। किसी भी घटना को समझने के लिए पहला कदम उसे पहचानना है, भले ही शुरुआत में उस घटना की गलत व्याख्या की गई हो (और आमतौर पर लगभग सभी महत्वपूर्ण घटनाओं के साथ यही स्थिति होती है)।

हालाँकि हवा के देवता, बारिश के देवता, आग के देवता आदि इन प्राकृतिक घटनाओं की गलत व्याख्या है, लेकिन ये मिथक मानव जाति द्वारा अपने शुरुआती दौर में अपनाए जाते रहे। यह विज्ञान के विकास में एक कदम रहा है। हालाँकि आज इन घटनाओं की व्याख्या इन मिथकों से नहीं बल्कि विज्ञान द्वारा ही निर्देशित होनी चाहिए। इसके साथ ही इन मिथकों, अनुष्ठानों, विशेषकर शिकार अनुष्ठानों के माध्यम से जनजातियाँ अपने नए सदस्यों को शिकार जैसी गतिविधियों में प्रशिक्षित करती थीं। उस समय समाज में उत्पादन का स्तर निम्न होने के कारण मनुष्य लगभग पूर्णत: प्रकृति के नियंत्रण में था और अधीनता की इसी स्थिति तथा उससे संघर्ष के फलस्वरूप इन मिथकों, रीति-रिवाजों आदि का जन्म हुआ। इन अनुष्ठानों में प्राकृतिक घटनाओं के पीछे काम करने वाली अदृश्य शक्तियों को खुश करने, उनके साथ अपने रिश्ते को घनिष्ठ बनाने के लिए अन्य अनुष्ठानों के अलावा पशु बलि और बाद में मानव बलि भी शामिल थी।

जैसे-जैसे मनुष्य ने प्रकृति के साथ संघर्ष करके अधिक उत्पादन विकसित किया, प्राकृतिक शक्तियों पर अपेक्षाकृत अधिक नियंत्रण प्राप्त किया, कृषि, पशुपालन आदि का विकास किया, वैसे-वैसे मनुष्य के विचारों में भी परिवर्तन आया और इन मिथकों, रीति-रिवाजों में परिवर्तन भी आया। जानवरों और कई प्राकृतिक शक्तियां, जिन्हें मनुष्य कभी खुद से अधिक शक्तिशाली मानता था, अब कुछ हद तक मनुष्य के अधीन हो गई थीं। इसके बावजूद भी अधिकांश प्राकृतिक प्रक्रियाओं को मनुष्य अभी भी समझ नहीं पाया था और कृषि के विकास के कारण वर्षा आदि कई प्रक्रियाओं का महत्व बढ़ गया, जिसके कारण उनके पीछे काम करने वाली अदृश्य शक्तियां अनुनय से जुड़ा रहा। इसके साथ ही कृषि एवं पशुपालन के और अधिक विकास के साथ-साथ मानव समाज में वर्ग विभाजन का आधार भी तैयार हुआ और इन मिथकों, रीति-रिवाजों आदि के प्रयोग में गुणात्मक परिवर्तन आया। वर्ग समाज में लूट का जो राज्य स्थापित हुआ वह धर्म आधारित राज्य था। शोषक वर्ग ने धर्म के आधार पर अपने शासन को उचित ठहराया। यहां, इन मिथकों, और अनुष्ठानों का काम राजाओं, पुजारियों के शोषक वर्ग द्वारा शासन की वैधता को साबित करने के लिए किया गया था। राजा ईश्वर का प्रतिनिधि या पृथ्वी पर सभी प्राकृतिक घटनाओं के पीछे की शक्ति बन गया जिसका कार्य शासन करना है। दूसरा, भगवान के लिए, आपके जीवन को संचालित करने वाली अदृश्य शक्तियों को केवल अनुष्ठानों आदि से ही मनाया जा सकता है, संतुष्ट किया जा सकता है और इन अनुष्ठानों आदि का ज्ञान पुजारियों ने अपने कब्जे में ले लिया था, इसलिए पुजारियों के लिए खाली बैठना स्वीकार्य होता गया जबकि शोषित वर्ग का जीवन श्रम

आधारित बनता चला गया।

सामंती युग (जिसमें राज्य धर्म पर आधारित था) के दौरान धर्म, कर्मकांड आधारित समाज संरचना बन गई थी लेकिन पूंजीवादी वर्ग के उद्भव के साथ ज्ञानमीमांसा को बढ़ावा मिलना शुरू हुआ क्योंकि पूंजीवादी उत्पादकता बढ़ाने के लिए प्राकृतिक प्रक्रियाओं का सटीक ज्ञान आवश्यक हो गया। प्राकृतिक घटनाओं की वैज्ञानिक व्याख्या मिथकों, कर्मकांडों, धार्मिक ग्रंथों में दर्ज व्याख्याओं के साथ सीधे टकराव में यह उभरा और ऐसी व्याख्याओं से न केवल इन मिथकों और धार्मिक ग्रंथों की वैधता खतरे में आती गई बल्कि उनके द्वारा उचित ठहराई गई। बहुत सी बातें भी खतरे में आ गई । मध्य युग में ब्रूनो जैसे वैज्ञानिक को जिंदा जलाने के पीछे कारण यह था कि उनके सिद्धांत धार्मिक ग्रंथों में दर्ज सिद्धांतों का खंडन करते थे और इन ग्रंथों के आधार पर चर्च की संपूर्ण सत्ता पर सवाल उठाते थे। पूँजीपति वर्ग के भौतिक हितों का टकराव सामंती वर्ग (राजाओं और राजकुमारों की शक्ति) से हुआ, सामंतवाद और उभरते पूंजीवाद के बीच वैचारिक संघर्ष भौतिक हितों के टकराव का प्रतिबिंब था। पूंजीवाद के आगे विकास में सबसे बड़ी बाधा सामंती वर्ग था। पश्चिमी यूरोप के भीतर, जहां पूंजीवाद सबसे पहले विकसित होना शुरू हुआ, पूंजीवादी विचारकों (नवजात बौद्धिक वर्ग) ने भी सामंती प्रभुओं के खिलाफ लड़ाई में आम लोगों को वैचारिक रूप से लामबंद किया।

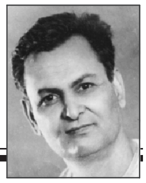
महान विद्वानों ने धार्मिक प्रथाओं, जादू-टोने, अनुष्ठानों, मिथकों आदि के विरुद्ध दृढ़ता से प्रचार किया, संक्षेप में, वे सभी चीजें जिनके माध्यम से सामंती वर्ग अपने शासन को उचित ठहराता था उन विचारों की पकड़ आम लोगों में कमजोर होती गई। इन आंदोलनों को आम तौर पर पुनर्जागरण, सुधार और ज्ञानोदय आंदोलनों के रूप में जाना जाता है। सामंतवाद के विरुद्ध जनता द्वारा लड़े गए संघर्षों में इन आंदोलनों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। आज इन आंदोलनों का ही योगदान है कि यूरोप से ऐसे अंधविश्वास और रीति-रिवाज लगभग लुप्त हो गए हैं और अगर इनके अवशेष हैं भी तो समाज में उनकी पकड़ भारत जैसे देशों जैसी बिल्कुल नहीं है।

भारत जैसे तीसरी दुनिया के कई देशों की त्रासदी यह है कि जब इन क्षेत्रों में पूंजीवाद के बीज अंकुरित होने वाले थे, तब इन्हें उपनिवेश बना लिया गया और इन समाजों की स्वाभाविक गति का गला घोंटकर औपनिवेशिक व्यवस्था थोप दी गई। इस व्यवस्था के भीतर पैदा हुआ पूँजीपति वर्ग और विशेषकर बुद्धिजीवी वर्ग लंगड़ा था। बौद्धिक वर्ग का एक बड़ा हिस्सा सामंतवाद से संबंधित वर्गों से पैदा हुआ था, जो लोगों के बीच सामंतवाद और उसकी विचारधारा, अनुष्ठानों और रीति-रिवाजों के खिलाफ कभी भी निर्णायक समाधान करने में सक्षम नहीं था और न ही उसने ऐसा किया। परिणामस्वरूप, भारत में पश्चिमी यूरोप की तरह कोई बड़े पैमाने पर क्रांतिकारी बौद्धिक आंदोलन नहीं हुआ। स्वतंत्रता संग्राम में सभी राजनीतिक दलों में से, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (तब वह सच्चे अर्थों में कम्युनिस्ट थी) ने सामंतवाद के खिलाफ उग्र आंदोलन का नेतृत्व किया, जबकि कांग्रेस हमेशा बचाव की मुद्रा में रही। आजादी के बाद भी, कांग्रेस ने सामंती प्रभुओं से जमीन छीनकर और मुख्य रूप से धीमे सुधारों के माध्यम से और सामंती प्रभुओं को पूंजीवादी कृषि अपनाने के लिए मनाकर या धमकाकर इसे प्रदर्शनकारी किसानों के बीच वितरित करके सामंतवाद को तो समाप्त कर दिया, परन्तु संघर्ष से जैसे यूरोप आदि देशों में यह खत्म हुआ वैसा भारत या एशियायी देशों में न हो सका, जो उपनिवेश बने थे। परिणाम स्वरूप जिन रीति-रिवाजों, मिथकों, धार्मिक परंपराओं आदि के माध्यम से सामंती वर्ग अपनी सत्ता को उचित ठहराता था, उनके विरुद्ध कभी कोई अभियान नहीं चला, बल्कि भारत के मूल शासकों ने भी इन रीति-रिवाजों, मिथकों, परंपराओं आदि को कांट छांट कर अपना लिया। आज भारत में इन मिथकों, अनुष्ठानों (मानव बलि सहित) का अगर अस्तित्व का बना हुआ है, इन मिथकों, अंधविश्वासों की जड़े सामन्ती परवृतियाँ हैं जिन्हें पूंजीवादी व्यवस्था ने अपने हितों की रक्षा के लिए अपना लिया है।

क्योंकि पूंजीवादी बाजार की ताकतों के लिए व्यवसाय की अनिश्चितता, परीक्षा में असफलता के कारण भविष्य की अनिश्चितता, रोजगार की अनिश्चितता, अपने पड़ोसियों, रिश्तेदारों, दोस्तों की तुलना में स्थिति में पिछड़ जाने का डर, कल पर्याप्त रोटी मिलेगी या नहीं, इस बारे में अनिश्चितता आदि और ये सब घटनाओं के पीछे काम करने वाले वास्तविक नियमों को न समझकर, विशेष रूप से भारत जैसे देशों में मिथकों, अनुष्ठानों, बलीओं आदि जैसे काल्पनिक समाधानों की ओर बढ़ने का आधार है। आर्थिक संकट गहराने के साथ भी, कई विकसित देशों में अंधविश्वासों,

शेष पृष्ठ 48 पर

तुम्हारी जात-पाँत की क्षय



– राहुल सांकृत्यायन

हमारे देश को जिन बातों पर अभिमान है, उनमें जात-पाँत भी एक है। दूसरे मुल्कों में जात-पाँत का भेद समझा जाता है भाषा के भेद से, रंग के भेद से। हमारे यहाँ एक ही भाषा बोलने वाले, एक ही रंग के आदमियों की भिन्न-भिन्न जाते होती हैं। यह अनोखा जाति-भेद हिन्दुस्तान की सरहद के बाहर होते ही नहीं दिखलाई पड़ता। और इस हिन्दुस्तानी जाति-भेद का मतलब?-धर्म और आचार पर पूरा जोर दोने वाले भिन्न जाति वालों के साथ खाना नहीं खा सकते, उनके हाथ क पानी तक नहीं पी सकते, शादी का सवाल तो बहुत दूर का है। मुसलमान और ईसाई तक भी इस छूत की बीमारी से नहीं बच सके हैं-कम-से-कम ब्याह-शादी में। अछूतों का सवाल, जो इसी जाति-भेद का सबसे उग्र रूप है हमारे यहाँ सबसे भयंकर सवाल है। कितने लोग शरीर छू जाने से स्नान करना जरूरी समझते हैं। कितनी ही जगहों पर अछूतों को सड़को से होकर जाने का अधिकार नहीं है। हिन्दुओं की धर्म-पुस्तकें इस अन्याय के आध्यात्मिक और दार्शनिक कारण पेश करती हैँ। गांधी जी अछूतपन को हटाना चाहते हैं, लेकिन शास्त्र और वेद की दुहाई भी साथ ले चलना चाहते हैं। यह तो कीचड़-से-कीचड़ धोना है।

अछूतपन को समझाना दूसरे मुल्क के लोगों के लिए कितना कठिन है। इसका मैं उदाहरण देता हूँ। 1922 में ब्रिटिश गवर्नमैंट ने जब अपना साम्प्रदायकि निर्णय दिया और गांधी जी ने उस पर आमरण अनशन शुरू किया, उस समय मैं लन्दन में था। बहुत दिनों के बाद यह सनसनीखेज खबर भारत के सम्बन्ध में इंग्लैंड के पत्रों में छपी। उन्होंने मोटी-मोटी सुर्खियाँ देकर इसे छापा। जिन देशों में अस्पृश्यता नहीं है, वहाँ के लोग इस बारे में क्या जानें? लन्दन यूनिवर्सिटी के पढ़ने वाले एक चीनी छात्र हमारे पास आये और उन्होंने पूछा ''अस्पृश्यता क्या है?'' मैने कुछ समझाना चाहा। उन्होंने पूछा- ''क्या कोई छूत की बीमारी होती है या कोढ़ की तरह का कोई कारण होता है जिससे कि लोग आदमी को छूना नहीं चाहते?'' मैंने कहा कि आदमी स्वस्थ और तन्दुरुस्त हमारी ही तरह होते हैं, हाँ अधिकाश की आर्थिक दशा हीन जरूर होती है। मैं आधे घंटे से अधिक अस्पृश्यता के बारे में समझाने की कोशिश करता रहा, लेकिन देखा कि मेरे दोस्त के पल्ले कुछ पड़ नहीं रहा है। तब मैने अमेरिका के नीग्रो लोगों का उदाहरण लेकर समझाना शुरू किया। अब यद्यपि मैं थोड़ा-बहुत समझाने में सफल हुआ, लेकिन तब भी वह उनकी समझ में नहीं आया कि एक ही रंग और रूप के आदमियों में अस्पृश्यता कैसी ?

पिछले हजार बरस के अपने राजनीतिक इतिहास को यदि हम लें तो मालूम होगा कि हिन्दुस्तानी लोग विदेशियों से जो पद्दलित हुए, उसका प्रधान कारण जाति-भेद था। जाति-भेद न केवल लोगों को टुकड़े-टुकड़े में बाँट देता है, बल्कि साथ ही यह सब के मन में ऊँच-नीच का भाव पैदा करता है। ब्राह्मण समझता है हम बड़े है, राजपूत छोटे हैं। राजूपत समझता है हम बड़े हैं, कहार छोटे हैं। कहार समझता है हम बड़े है। हर अपने मन को समझाने के लिए किसी को छोटा कह ही लेता है। हिन्दुस्तान में हजारों जातियाँ हैं और सबमें यह भाव है। राजपूत होने से ही यह न समझिए कि सब बराबर हैं। उनके भीतर भी हजारों जातियाँ हैं। उन्होंने कुलीन कन्या से ब्याह कर अपनी जात ऊँची साबित करने के लिए आपस में बड़ी-बड़ी लड़ाइयां लड़ी हैं और देश की सैनिक शक्ति का बहुत भारी अपव्यय किया है। आल्हा-ऊदल की लड़ाइयाँ इस विषय में मशहूर है।

इस जाति-भेद के कारण देश-रक्षा का भार सिर्फ एक जाति के ऊपर रख दिया गया था। जहाँ देश की स्वन्त्रता के लिए सारे देश को कुर्बानी के लिए तैयार रहना चाहिए, वहाँ एक जाति के कंधे पर सारी जिम्मेदारी दे देना बड़ी खतरनाक बात थी। राजपूत जाति ने जहाँ तक सैनिक उत्साह का सम्बन्ध है, अपने को अयोग्य नहीं साबित किया, तो भी सिर्फ देश-रक्षा की बात नहीं रह गई, वहाँ तो उसके साथ-साथ राजशक्ति का प्रलोभन भी उनमें बहुत बड़ा था और इसी के लिए आपस में वे बराबर लड़ने लगे। उनके सामने मुख्य बात थी खास-खास राजवंशों की रक्षा करना ही था-उन्होंने राष्ट्रीय सैनिक शक्ति को अनेकों टुकड़ों में बाँट दिया और एक साथ होकर

विदेशियों से न लड़ सके। यदि जात-पाँत न होती तो और मुल्कों की तरह सारे हिन्दुस्तानी देश की स्वतन्त्रता के लिए लड़ते। जातीय एकता के कारण छोटे-छोटे मुल्क बहुत पीछे तक अपनी स्वतन्त्रता कायम रखने में समर्थ हुए। इतना भारी देश हिन्दुस्तान जबकि बारहवीं शताब्दी में ही परतन्त्र हो गया, लंका (सीलोन) का छोटा टापू जिसकी आबादी अब भी पचास लाख के करीब है-1814 तक परतन्त्र न हुआ था। बर्मा तो उससे साठ-बरस ओर पीछे तक आज़ाद रहा है। हिन्दुस्तान के पड़ोस के इतने छोटे-छोटे मुल्क इतने दिनों तक अपनी स्वतंत्रता को क्यों कायम रख सके, और आज भी अफगानिस्तान जैसे देश क्यों आज़ाद है। इसलिए कि वहाँ जाति इतने टुकड़ों में विभक्त नहीं है। वहाँ ऊँच-नीच का भाव इतना नहीं फैला है और देश के सभी निवासी अपनी स्वतंत्रता के लिए क्षत्रिय बनकर कंधे से कन्धा मिलाकर लड़ सकते हैं।

हिन्दुस्तान के इतिहास में कई बार ऐसा समय आया जबकि देश की स्वतन्त्रता फिर लौटी आ रही थी। लेकिन हमारी पुरान आदतों ने वैसा होने नहीं दिया। शेरशाह के वंस के राजमंत्री बहादुर हेमचन्द्र ने एक बार चाहा क्या, दिल्ली के तख्त पर बैठ भी गया, लेकिन राजपूतों ने बनिया कहकर उसका विरोध किया। दूरदर्शी सम्राट अकबर ने सारे भारत को एक जाति में लाने का स्वप्न देखा, लेकिन उसका वह स्वप्न, स्वप्न ही रह गया। और उसके बाद के हिन्दू मुस्लमानों ने कभी उस जातीय एकता के ख्याल को फूटी आँखों देखना पसन्द नहीं किया। अंग्रेज़ों के हाथ में जाने से पहले भारत में सबसे बड़ा साम्राज्य मराठों का था, लेकिन वह भी ब्राह्मण-अब्राह्मण के झगड़ों के कारण चूर-चूर हो गया। हमारे पराभव का सारा इतिहास बतलाता है कि हम इसी जाति भेद के कारण इस अवस्था तक पहुँचे।

आधी शताब्दी से अधिक बीत गई जबसे कांग्रेस ने जातीय एकता कायम करने का बीड़ा उठाया। जो कुछ थोड़ी-बहुत एकता कायम करने में वह सफल हुई है, उसका फल भी हम देख रहे हैं और दो प्रान्तों को छोड़कर बाकी सभी प्रान्तों के शासन की बागडोर कांग्रेस के हाथ में है। (सिन्ध की सरकार भी कांग्रेस के प्रभाव को मानती है)। लेकिन कांग्रेस के नेताओं के मनोभाव को हम क्या देख रहे हैं? कांग्रेस के बड़े-बड़े हिन्दु जहाँ एक तरफ जातीय एकता के शोर से जमीन-आसमान एक करते रहते हैं, वहाँ दूसरी तरफ "भारतीय संस्कृति" और हिन्दु-धर्म के प्रेम से किसी से एक इंच भी कम नहीं रहना चाहते। और इसी कारण वे अपने-अपने छोटे से जातीय दायरे से जरा भी बाहर निकलने का हिम्मत नहीं रखते। कायस्थ कांग्रेस नेता कायस्थ जाति की एकता और उसके अगुवापन की परवाह बहुत ज्यादा रखते हैं। जब उनका ब्याह-शादी या जन्म-मरण अपनी ही जाति के भीतर होने वाला है तो उनकी तो दुनिया में कायस्थों के भीतर है। कायस्थ रिश्तेदार के-चाहे वह योग्य हो या अयोग्य, उसके और उसके परिवार के लिए कोई जीविका का प्रबन्ध करना तो जरूरी है-कोई नौकरी दिलानी ही होगी और ऐसे जाति भक्ति के काम के लिए भी अन्याय, अन्याय नहीं, पाप, पाप नहीं। भूमिहार कांग्रेस-नेता है। जब तक भूमिहार जाति से अलग उसका नाता-रिश्ता नहीं, तब तक वह कैसे भूमिहार से बाहर की दुनिया को अपनी दुनिया समझेगा? हमारे नेताओं में जातीयता के ये भाव कितने जबर्दस्त हैं, यह सभी जानते हैं। इस भाव के कारण हमारा सार्वजनिक जीवन बहुत गन्दा हो गया है और राष्ट्रीय शक्ति सबल नहीं होने पाती। राजनीतिक दल तो पहले से ही है, इसमें जातीय दलबन्दी अवस्था को और भी भयंकर बना देती है। यह जाति-भेद सिर्फ हिन्दुओं के ही राजनीतक नेताओं में नहीं, बल्कि मुसलमान और दूसरे भी इससे बचे नहीं है। मुसलमानों के ऊँची जाति के नेताओं के स्वार्थ और अदूरदर्शिता के कारण वहाँ भी मोमिन और गैर-मोमिन का सवाल छिड़ गया है, यद्यपि मुस्लिम नवाबों और सेठ-साहूकारों की बराबर कोशिश हो रही है कि बाजा और गोकशी का सवाल रखकर निम्न श्रेणी के लोगों को उस प्रश्न से अलग रखा जाये। लेकिन निश्चय ही इसमें असफलता होगी। राष्ट्रीय नेता की दृष्टि बहुत व्यापक होनी चाहिए। उनका अध्ययन और अनुभव विस्तृत होता है, और इस प्रकार वह भविष्य पर दूर तक सोच सकता है। लेकिन उसकी यह शोचनीय मनोवृति है। बिहार प्रान्त के कांग्रेसी नेताओं और मिनिस्टरों के इस जात-पाँत के भाव ने बड़ा ही घृणित रूप धारण कर लिया है। मिनिस्टर अपनी जाति के मैम्बरों की ठोस जमात अपने पीछे रखकर उसी दृष्टि से काम करते हैं, और अवस्था यहाँ तक पहुँच गई है कि यदि दृष्टिकोण में परिवर्तन नहीं हुआ तो सार्वजनिक जीवन की गन्दगी पराकाष्ठा को पहुँच जायेगी।

ये सारी गन्दगियाँ उन्हीं लोगों की तरफ से फैलाई गई है

जो धनी हैं या धनी होना चाहते हैं। सबके पीछे ख्याल है धन को बटोर कर रख देने या उसकी रक्षा का। गरीबों और अपनी मेहनत की कमाई खाने वालों को ही सबसे ज्यादा नुक्सान है, लेकिन सहस्त्राब्दियों से जात-पाँत के प्रति जनता के अन्दर ख्याल पैदा किये गये हैं, वे उन्हें अपनी वास्तविक स्थिति की ओर नज़र दौड़ाने नहीं देते। स्वार्थी नेता खुद इसमें सबसे बड़े बाधक है।

संसार की रविश हमें बतला रही है कि हम अधिक दिनों तक इस जातीय भेदभाव को कायम नहीं रख सकते। दुनिया की चाल को देखकर अब हिन्दुस्तान के अछूत-अछूत रहने को तैयार नहीं है-अर्जल (निम्न जाति) अर्जल रहने को तैयार नहीं है। अछूत और अर्जल रखकर सिर्फ उनके साथ अपमानपूर्ण बर्ताव ही नहीं किया जाता, बल्कि आर्थिक स्वतन्त्रता से भी उन्हें वंचित किया गया जाता है। फिर वे कब समाज में सह्सत्राब्दियों से पहले निर्धारित किये स्थान पर रहना पसन्द करेंगे और आज़ादी के दीवाने तो इस प्रथा के विरुद्ध जेहाद बोल चुके हैं। वे इसके लिए सब तरह की कुर्बानियाँ करने को तैयार हैं। उनके लिए राजनीतिक युद्ध से यह सामाजिक युद्ध कम महत्व नहीं रखता। वे जानते हैं कि जब तक जातियों की खाइयाँ बन्द न की जायेंगी, तब तक जातीय एकता की ठोस नींव रखी नहीं जा सकती। वे जानते हैं कि इस बात में मजहब उनका सबसे बड़ा बाधक है, लेकिन वे मजहब की परवाह कब करने वाले हैं। वे जात-पाँत के साथ हिन्दु धर्म को एक ही डंडे से मारकर समुद्र में डुबायेंगे।

देखने में जात-पाँत की इमारत मजबूत मालूम होती है, लेकिन इससे यह न समझना चाहिए कि उसकी नींव पर करारी चोट नहीं लग रही है। जातीय भेद के दो रूप हैं-एक रोटी में छूत-छात, दूसरे, बेटी में असहयोग। रोटी में छूत-छात की बात उन्हीं धनिकों ने सबसे पहले तोड़नी शुरु की जो अपने स्वार्थ को अक्षुण्ण रखने के लिए जातीय संगठनों और जातीय एकताओं के सबसे बड़े पोषक हुए। जहाँ पहले विलायत जाने वाले जात से बहिष्कृत किये जाते थे, वहाँ आज वे ही जात के चौधरी हैं। दरभंगा बीकानेर को ही नहीं, दूसरी जातियों के अगुवों को भी देख लीजिए। सभी जगह विलायत में सब तरह के लोगों के साथ, सब तरह का खाना खाकर लौटे हुए लोग ही आज नेता के पद पर शोभित हैं। आई० सी० एस० दामाद पाने वाला ससुर अपने को निहाल समझता है।

पिछले बीस बरसों में रोटी की एकता बड़ी तेजी के साथ कायम हो रही है। 1921 से पहले हिन्दू होटल शायद ही कहीं दिखलाई पड़ते थे। लेकिन आज छोटे-छोटे शहरों में ही चार-चार छै-छै दर्जन होटल नहीं है, बल्कि छोटे-छोटे स्टेशनों पर खुल गये हैं। कुछ साल पहले तक किसको पता था कि छपरा स्टेशन के प्लेटफार्म पर हिन्दू खोमचा वाला गोश्त-पराठें बेचता फिरेगा। मेरे एक दोस्त एक दिन पटने में किसी होटल में भोजन करने गये। उनकी क्यारी की बगल में एक लड़का बैठा था और उसकी बगल में एक तिरहुतिये ब्राह्मण चन्दन-टीका लगाकर बैठे थे। क्यारी छोटी थी और लड़के का हाथ ब्राह्मण देवता के शरीर से छु गया। वह उस पर आग बबूला हो गये, डाँटकर जात पूछने लगे। हमारे साथी ने लड़के को चुपके से समझा दिया-कह दो रैदास भगत। लड़के ने जब ऐसा कहा तो ब्राह्मण का कौर मुँह का मुँह में रह गया। वह अभी बोलने को कुछ सोच ही रहे थे कि आसपास के लोग उन पर बिगड़ उठे-यह होटल है, यहाँ दाल-भात की बिक्री होती है। तुमने जात-पाँत क्यों पूछी? ब्राह्मण देवता को लेने के देने पड़ गये। यदि खाना छोड़कर जाते हैं, तो यही नहीं कि पैसे दण्ड पडेंगे, बल्कि सब लोगों को खुल कर हँसी उड़ाने का मौका मिलेगा। इसलिए बेचारे ने सिर नीचा करके चुपचाप भोजन कर लिया।

रोटी की छूत का सवाल हल-सा हो चुका है। शिक्षित तरुण इसमें हिन्दू-मुसलमान का भेद-भाव नहीं रखना चाहते। लेकिन बेटी का सवाल अब भी मुश्किल मालूम पड़ता है। एक दिन रेल में सफर करते मुझे एक मुसलमान नेता मिले। वह समाजादियों के नाम से हद से ज्यादा घबराये हुए थे। बोले ''समाजवादी, खैर, लोगों की गरीबी दूर करना चाहते हैं, इस्लाम भी मसावात् (समानता) का प्रचारक है, लेकिन वे मजहब के खिलाफ क्यों हैं?''

मैं-''साम्यवादी मजहब के खिलाफ अपनी शक्ति का तिल भर भी खर्च करना नहीं चाहते। वे तो चाहते हैं कि दुनिया में सामाजिक अन्याय और गरीबी न रहने पाये।''

मौलाना - ''इसमें हम भी आपके साथ हैं।''

मैं - ''आप भी साथ हैं? क्या आपक सारे हिन्दुस्तानियों की रोटी-बेटी एक कराने के लिए तैयार हैं?''

मौलाना-''इसकी क्या जरूरत है?''

मैं - ''क्योंकि गरीब जब तक आजादी हासिल नहीं कर सकते, जब तक अपनी कमाई स्वयं खाने का हम हक पा नहीं

सकते, जब तक कि वे एक होकर अपने चूसने वालों - चाहे वे देशी हों या विदेशी - का मुकाबला करके उन्हें परास्त नहीं करते।''

मौलाना- ''रोटी तक तो हम आपके साथ हैं, लेकिन बेटी में नहीं।''

पास ही एक पण्डित जी बैठे हुए थे जो बातचीत से वकील मालूम होते थे। वह झट बोल उठे- ''आप लोग तो दूसरे मुल्कों के साँचे में हिन्दुस्तान को भी ढालना चाहते हैं। आप लोग यह सोचने की तकलीफ गवारा नहीं करते कि हिन्दुस्तान धर्म-प्राण मुल्क है, इसकी सभ्यता और संस्कृत निराली है। भारत यूरोप नहीं हो सकता। रोटी की तो बात, खैर, एक होती देखी जा रही है, लेकिन बेटी एक होने की बात कह कर तो आप शेखचिल्ली को भी मात करते हैं।''

मैं-''कुछ बरसों पहले रोटी की एकता भी शेखचिल्ली की ही बात थी। खैर, आज आप उसे तो कबूल करते हैं न? बेटी की भी बात शेखचिल्ली की नहीं। बीस बरस पहले के चौके-चूल्हे को देखकर किसको आशा थी कि हमें आज का दिन देखना पड़ेगा? हिन्दू खुल्लम-खुल्मा मुसलमान और ईसाई के साथ खाना खाते हैं, लेकिन बिरादरी की मजाल है कि उनसे नाता-रिश्ता तोड़ें? हिन्दु-मुसलमान की शादियाँ होनी शुरू हो गई है। पंडित जवाहर लाल की भतीजी ने मुसलमान से शादी की है और बिना कलमा पढ़े। आसफ अली की बीवी अरुणा ने इस्लाम धर्म को स्वीकार नहीं किया। प्रोफेसर हुमायूँ कबीर ने भी इसी तरह की शादी बंगाल में की है। ऐसी मिसालें दर्जनों मिलेगी जिनमें हिन्दु युवतियों ने बिना मजहब बदले शादियाँ की है। हिन्दू नवयुवक भी धरम की जंजीर तोड़ कर शादी करने लग गये हैं। गोरखपुर के श्यामाचरण शास्त्री ने बिना शुद्धि के मुसलमान लड़की से शादी की है। गुजरात के एक संभ्रान्त कुल के हिन्दू युवक ने एक प्रतिष्ठत मुसलमान-कुल की सुशिक्षिता लड़की से शादी की है। यह निश्चित है कि दिन-प्रतिदिन ऐसे ब्याहों की संख्या बढ़ती ही जायेगी। समाज के जबर्दस्त बाँध में जहाँ सुई भर का भी छेद हो गया, वहाँ फिर उसका कायम रहना मुश्किल है।''

जात-पाँत तोड़कर एक धर्म के भीतर शादियाँ तो और ज्यादा हैं। लेकिन हमारे देश का दुर्भाग्य है कि जिस काम को अवश्य करना है, उसे भी लोग बहुत धीमी चाल से करना चाहते हैं। ठोस जातीय एकता हमारे लिए सबसे आवश्यक चीज है और वह मजहबों और जातों की चारदीवारियों को ढहाकर ही कायम की जा सकती है। हमारी रविश जिस बात को अवश्यंभावी बतला रही है। जिसे किये बिना हमारे लिए दूसरा कोई रास्ता नहीं, उसके करने में इतनी ढिलाई दिखलाना क्या सरासर बेवकूफी नहीं है?

हिन्दुस्तानी जाति एक है। सारे हिन्दुस्तानी चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, बौद्ध हों, या ईसाई, मजहब के मानने वाले हों या ना मानने वाले, उनकी एक जाति है-हिन्दुसतानी, भारतीय। हिन्दुस्तान से बाहर यूरोप और अमेरिका में ही नहीं, पड़ोस के ईरान और अफगानिस्तान में भी हम इसी-हिन्दी-नाम में पुकारे जाते हैं। हिन्दु सभा वाले अपने भीतर की जातियों को तोड़ने के लिए चाहे उतना उत्साह न भी दिखलाते हों, लेकिन वे मौके-बे-मौके यह घोषणा जरूर कर दिया करते हैं कि हिन्दू जाति आलग है। मुस्लिम लीग ने तो बीड़ा उठाया है कि मुसलमानों की हमेशा के लिए अलग जाति बनायी जाय। वह तो बल्कि इसी विचार के अनुसार हिन्दुस्तान को अलग हिस्सों में बाँटना चाहती हैं। नौ करोड़ मुसलमानों में सात करोड़ तो सीधे ही वह खून अपने शरीर में रखते हैं जो कि हिन्दुओं के बदन में हैं। और बाकी, दो करोड़ में कितने हैं जो कलेजे पर हाथ रख कर कह सकते हैं कि उनमें चौथाई भी गैर-हिन्दुस्तानी खून है? जाति का निर्णय खून से होता है। और, इस कसौटी से परखने पर दुनिया का कोई भी आदमी-हिन्दुस्तान से बाहर-हिन्दुस्तान के मुसलमानों को अलग कौम मानने को तैयार नहीं हो सकता। तीन चौथाई अरबी शब्द बोलकर हिन्दुस्तानी मुसलमान न अरब में जाकर हिन्दी छोड़कर दूसरा कहला सकता है और न अरबी जबान को वह अपनी मातृभाषा ही बना सकता हैं। हमारे नौजवान इस बँटवारे को अधिक दिनों तक बर्दाश्त नहीं कर सकते। नई सन्तानों के लिए तो अच्छा होगा कि हिन्दुओं की औलाद अपने नाम मुसलमानी रखे, और मुसलमानों की औलाद अपने नाम हिन्दू रखे, साथ ही मजहबों की जर्बदस्त मुखालफत की जाय। सूरत-शक्ल के बनावटी भेद को भी मिटा दिया जाये। इस प्रकार मजहब के दीवानों को हम अच्छी तालीम दे सकते हैं।

निश्चिय है कि जात-पाँत की क्षय करने से हमारे देश का भविष्य उज्ज्वल हो सकता है।

(स्रोत : पुस्तक 'तुम्हारी क्षय' : राहुल सांकृत्यायन)

अपनी शादी का कार्ड लेकर गंगा मैया को न्यौता देने आई युवती डूबी

दानापुर-मां गंगा को अपनी शादी का कार्ड लेकर निमंत्रण देने आई युवती गहरे पानी में चले जाने से डूब गई। पास मौजूद युवती की दादी व बहन ने उसे बचाने का प्रयास किया मगर वह असफल रहीं। घटना नासरीगंज स्थित फक्कर महतो घाट की है। गंगा घाट पर मौजूद दादी व बहन जोर जोर से रोने व शोर मचाने लगी। युवती के डूबने की सूचना मिलते ही मौके पर आसपास के लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई। सूचना पर घर में मौजूद सभी परिजन घाट पर पहुँच गए व रोने लगे। वहीं युवती के शव को तलाशने के लिए एम डी आर एफ व स्थानीय गोताखोर लगे। युवती आदर्श नगर निवासी रविरंजन राय की 19 वर्षीय पुत्री मुस्कान उर्फ प्रतिभा कुमारी है।

घाट पर मौजूद दादा बाबू नंद राय ने बताया कि 19 अप्रैल को घर में शादी थी। मुस्कान खुद अपनी शादी का कार्ड लेकर मां गंगा को निमंत्रण देने अपनी दादी और बहन के साथ घाट पर आई थी। निमंत्रण देने से पहले वह गंगा में स्नान करने लगी। स्नान करने के दौरान अचानक वह गहरे पानी में चली गई और देखते ही देखते दादी व बहन के सामने डूब गई। **दैनिक भास्कर (30-03-2024)**

पुराने जमाने के लोग सचमुच ही सोचते थे कि अक्षरों की खोज ईश्वर ने की है पर आज हम जानते है कि अक्षरों की खोज किसी ईश्वर ने नहीँ, बल्कि स्वयं आदमी ने की है। अब तो हम यह भी जानते हैं किन अक्षरों की खोज किस देश में किस समय हुई।

हमारी यह धरती लगभग 5 अरब साल पुरानी है। दो तीन अरब साल तक इस धरती पर किसी प्रकार के जीव-जंतु नहीँ थे। फिर करोड़ो साल तक केवल जानवरों और वनस्पतियों का ही इस धरती पर राज्य रहा। आदमी ने इस धरती पर कोई 5 लाख साल पहले जन्म लिया। धीरे-धीरे उसका विकास हुआ। कोई दस हजार साल पहले आदमी ने गांवो को बसाना शुरू किया। वह खेती करने लगा। वह पत्थरों के औजारों का इस्तिमाल करता था। फिर उसने तांबे और कांसे के औजार बनाए।

तब तक काफी बाद में आदमी ने अक्षरों की खोज की। अक्षरों की खोज के सिलसिले को शुरू हुए मुश्किल से 6 हजार साल हुए हैं। **(गुणाकर मुले की कलम से कुछ अंश)**

जादू टोना के संदेह में बुजुर्ग की हत्या में 16 को उम्र कैद

बिहार के औरंगाबाद जिले की एक अदालत ने जादू टोना के संदेह में बुजुर्ग की हत्या करने में दो महिलाओं सहित 16 लोगों को आजीवन कारावास की सजा सुनाई। अपर जिला एंव सत्र न्यायाधीश द्वितीय(औरंगाबाद)धनंजय मिश्रा की अदालत ने 13 अगस्त 2020 को जगदीश राम (65 वर्ष)की हत्या करने में प्रत्येक दोषी पर 25000 रुपए जुर्माना भी लगाया। जगदीश की दोषियों ने इस सन्देह में हत्या कर दी थी कि वह जादू-टोने में शामिल था। उस पर तेज और कुंद वस्तुओं से हमला किया गया। (ब्यूरो)

(अमर उजाला) (9-6-2024)

ज़िंदगी

प्रीत सुरिंदर घनिया

ज़िंदगी सोने की सेज नहीं
न ही मखमली बिस्तरों पर
पलसेटे मारने का नाम ज़िंदगी है।
न ही ज़िंदगी
बियर बार में बैठकर
व्हिस्की की बोतलें हुंगाल कर
बड़ी रात बीते घर जाकर
बीवी का माँस नोंचने जैसा कुछ है।
अशरफियों की भूख को
तृप्त करके के लिए
किसी जालिम राजा की
'दयालुता' पर लिखी
किसी शायर की कविता
भी नहीं है ज़िंदगी।
ज़िंदगी को जीना है 'गर
तो जान लो
अपने सिर पर कफन ओढ़कर
ज़िंदगी के सिर पर
ताज रखने का
नाम है ज़िंदगी।

अंग प्रत्यारोपण का अमानवीय संजाल

– देवाशीष प्रसून

मानव अंग के कारोबार में संलिप्त गिरोह बहुत सुनियोजित तरीके से गरीब और असहाय लोगों को बहुत मामूली रकम की एवज में जीते-जी अपने अंग बेचने को तैयार कर लेते हैं।

पूरी दुनिया में हर साल करीब डेढ़ लाख से अधिक मानव अंगों का प्रत्यारोपण होता है, जबकि इसकी चाहत रखने वाले लोगों की गिनती पंद्रह लाख से अधिक है। भारत में मानव अंग प्रत्यारोपण कानून 1994 में लागू हुआ। उसके बाद मानव अंगों के व्यावसायिक लेन-देन को दंडनीय अपराध घोषित किया गया। अलबत्ता मानव अंग के कारोबार में संलिप्त गिरोह बहुत सुनियोजित तरीके से गरीब और असहाय लोगों को बहुत मामूली रकम की एवज में जीते-जी अपने अंग बेचने को तैयार कर लेते हैं। हालांकि कई बार पीड़ितों को तय की गई धनराशि नहीं मिलती और उन्हें वादाखिलाफी और ठगी का दंश झेलना पड़ता है। हाल में ऐसे ही एक गिरोह का पता चला, जिसके तार बांग्लादेश से लेकर झारखंड होते हुए गुरुग्राम और जयपुर से जुड़े थे। यह गिरोह बांग्लादेश के गरीब लोगों को जीते-जी अपना गुर्दा बेचने के लिए तैयार करता था। फिर उन्हें गुरुग्राम लाया जाता, कुछ दिन वहां ठहराकर उन पर तमाम तरह की चिकित्सीय जांच होती है और किडनी प्रत्यारोपण के लिए उन्हें जयपुर ले जाया जाता, जहां दो बड़े अस्पतालों में उनके स्वस्थ अंग निकाल कर किसी अमीर व्यक्ति के बीमार शरीर में लगा दिया जाता था।

कुछ मरीज जीने की लालसा में कानून तोड़ने और अंग प्रत्यारोपण के लिए कोई भी कीमत चुकाने को तैयार रहते हैं, भले इस प्रक्रिया में कमजोर और गरीब लोगों का भीषण शोषण होता हो। 'ग्लोबल फाइनेंशियल इंटीग्रीटी' द्वारा 'वैश्विक अपराध और विकासशील विश्व' विषय पर मार्च 2017 में प्रकाशित एक रपट में मानव-अंगों के वैश्विक वार्षिक अवैध कारोबार को करीब 84 करोड़ से 1.7 अरब अमेरिकी डालर का आंका गया। जिसमें हर वर्ष अवैध रूप से करीब बारह हजार अंग प्रत्यारोपण कराया जाता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा 2007 में प्रकासित एक शोध-प्रबंध के अनुसार भारत में 305 लोगों पर हुए एक अध्ययन में पाया गया कि अपना गुर्दा बेचने में उनतीस फीसदी स्त्रियां और इकहत्तर फीसदी पुरुष शामिल थे। उनमें 60 फीसद स्त्रियां और 95 फीसदी पुरुष दिहाड़ी मजदूरी या रेहड़ी-पटरी पर श्रम आधारित कारोबार करते और कुल मिलाकर 71 फीसद लोग गरीबी रेखा से बेहद नीचे रहने वाले थे। अंगदान के बाद 86 फीसद लोगों ने अपनी सेहत में लगातार गिरावट महसूस किया था। 96 फीसदी अंग विक्रेताओं ने कर्ज चुकाने के लिए अपना गुर्दा बेचा था। बावजूद इसके, इस सर्वेक्षण के मुताबिक उनमें से तीन-चौथाई लोग कर्जमुक्त नहीं हो पाए। क्योंकि उनकी शारीरिक क्षमता लगातार कम होती जा रही थी और वे पहले की तरह मजदूरी कर कमाने के काबिल नहीं बचे थे।

> विभिन्न रपटों के विश्लेषण से पता चलता है कि मानव अंगों में सबसे अधिक बिकने वाला अंग किडनी है, जिसकी कीमत तेरह सौ से डेढ़ लाख अमेरिकी डालर है। इसके बाद औसतन चार हजार से लेकर 1.57 लाख अमेरिकी डालर तक की कीमत पर उपलब्ध लीवर दूसरा सबसे अधिक बिकने वाला अंग है। इनके अलावा नेत्रपटल, अनिषेवित मानव अंडे, रक्त, त्वचा, अस्थियों और अस्थि-बंधनों की भी मांग बनी रहती है। हृदय और फेफड़ां जैसे महत्वपूर्ण अंगों की तो बहुत अधिक मांग है, इसलिए इनकी कीमतें भी बहुत अधिक है।

अंग प्रत्यारोपण के दौरान चिकित्सीय और साफ-सफाई के घटिया इंतजाम की वजह से हेपेटाइटिस बी, हेपेटाइटिस सी और एचआइवी जैसी बीमारियों का खतरा भी अंगदाताओं के सामने मंडराता रहता है। अंग बेचने से होने वाली मानसिक और शारीरिक पीड़ा तथा सर्जरी के बाद देखभाल के घोर अभाव के कारण होने वाले अवसाद और अन्य मानसिक बीमारियों के कारण अंगदाताओं का स्वास्थ्य निरंतर खराब होता चला जाता है। जाहिर है कि जिनकी देह से अंग निकाला जाता है, उसकी सेहत की भरपाई किसी भी तरह, कभी भी नहीं हो पाती।

विभिन्न रपटों के विश्लेषण से पता चलता है कि

मानव अंगों से सबसे अधिक बिकने वाला अंग गुर्दा या किडनी है, जिसकी कीमत तेरह सौ से डेढ़ लाख अमेरिकी डालर है। इसके बाद औसतन चार हज़ार से लेकर 1.57 लाख डालर तक की कीमत पर उपलब्ध लीवर दूसरा सबसे अधिक बिकने वाला अंग है। इसके अलावा नेत्रपटल, अनिषेवित मानव अंडे, रक्त, त्वचा, अस्थियों और अस्थि-बन्धनों की भी मांग बनी रहती है। हृदय और फेफड़ा जैसे महत्वपूर्ण अंगों की तो बहुत अधिक मांग है, इसलिए इनकी कीमतें भी बहुत अधिक है, परप प्रत्यारोपण सर्जरी की परिष्कृत प्रकृति और तकनीकी जटिलता के कारण इनका अवैध कारोबार कम ही होता है।

गैर कानूनी अंग प्रत्यारोपण में भेदभाव से जुड़ा एक ओर चिंताजनक आयाम वह है कि अमूमन स्वस्थ अंगों की बिक्री सामाजिक और आर्थिक रूप में कमज़ोर लोग करते हैं और इसके लाभार्थी अक्सर संपन्न लोग होते हैं। इस प्रवृति का खुलासा कई स्तरों पर होता है-मसलन, विकासशील देशों के लोग अंगदाता होते है और विकसित देशों के लोग प्राप्तकर्ता। महिलाएं अंग देने वाली होती है और लेने वाले पुरुष। मसलन, अश्वेत लोगों से गुर्दा, जीवित ऊतक या लीवर आदि लेकर गोरे लोगों में लगाया जाता है। बड़े शर्म की बात है कि अफ्रीकी, दक्षिण एशियाई या फिलिपिनी लोगों के गुर्दों के मुकाबले तुर्किए या पेरू मूल के लोगों का गुर्दा कई गुना महंगा है। मानो, मानव अंग न हुआ, अलग-अलग नस्लों की भेड़-बकरियां हों।

'वर्ल्ड किडनी फोरम' के दिसंबर 2009 अंक प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार 5.4 अरब लोगों का प्रतिनिधत्वि करने वाले 98 देश, जो दुनिया को तत्कालीन आबादी का 82 फीसदी हिस्सा थी, पर हुए एक सर्वेक्षण में पाया गया कि वर्ष 2004 में किडनी प्रत्यारोपण के 10 फीसद मामलों में विकसित देशों के मरीजों ने आर्थिक रूप से सपन्न राष्ट्रों के अंगदाताओं से स्वस्थ गुर्दा की खरीदारी की थी। इस अध्ययन के अनुसार, पाकिस्तान, भारत और तुर्किए जैसे आर्थिक रूप से पिछड़े देशों ने दुनिया भर में सबसे लोकप्रिय 'किडनी बाजार' होने की अप्रिय 'प्रतिष्ठा' हासिल कर ली थी, जहां महज पंद्रह हजार से लेकर डेढ़ लाख अमेरिकी डालर तक के पैकेज में गुर्दा प्रत्यारोपण का धंधा ज़ोरों से चल रहा था। कीमतें मांग और आपूर्ति के बाजार नियम से संचालित होती हैं, जिसकी बोलियां अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लगती है। 2007 में पाकिस्तान से 2500 गुर्दे बिके, जिनके दो-तिहाई खरीदारी विदेशी थे। भारत में भी 2008 में अरबों रुपए का 'किडनी घोटाला' सामने आया था, जिसमें पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गरीबों से गुर्दा लेकर यू एस, यूके, कनाडा, सऊदी अरब और ग्रीस के ग्राहकों में प्रत्यारोपित किया गया था।

अंगों की कालाबाजारी में मनुष्यता का यों पतन कर उसे ऐसे जानवरों की तरह बना देना, जिसके अंगों का खरीद-बिक्री खुले बाजार में होती हो, मानवाधिकारों का घोर अपमान है। अंगों के कालाबाजारी की आपराधिक पृष्ठभूमि के चलते उपजी गोपनीयता के कारण वर्तमान हालात के बारे में कोई सटीक ताजा आंकड़ा उपलब्ध नहीं है, फिर भी पुराने आंकड़ों से हम इस धंधे की भयावहता का अंदाज़ा लगा सकते हैं। लिहाजा, अंगदाताओं को ऐसी करुण कथा के मद्देनजर आज आवश्यक हो गया है कि इस तरह के मामले में निजी स्वार्थों से ऊपर उठ कर इंसानियत के मूल्यों की रक्षा की जाए और अपने जीवन की तरह लोग दूसरों के जीवन के प्रति भी संवेदनशील बनें। विचारणीय है कि स्वार्थवश किसी मजलूम की मजबूरियों का फायदा उठा कर अगर कोई अपनी धनशक्ति की बदौलत दूसरों के अंग छीनकर दो-चार साल की उम्र बड़ा भी ली जाए, तो यह अमानवीय से कम नहीं होगी। (साभार: जनसत्ता)

तदर्थ जीवन

डॉ. रणजीत

कभी-कभी लगता है
यह दुनिया
कोई वास्तविक दुनिया नहीं
काम चलाने के लिए
यों ही सी एक तदर्थ दुनिया है।
अधिकतर लोग यहाँ जीवन नहीं
उसकी प्रतीक्षा में
एक काम चलाऊ
अंतरिम सा जीवन जी रहे हैं
किसी तदर्थ काम पर लगे हुए
कुछ तदर्थ मित्रों के साथ
एक तदर्थ राहत की चाय पी रहे हैं।
किसी काम चलाऊ पत्नी या पति के साथ
किसी तरह जिंदगी की
चिर-चिर जाती चादर सी रहे हैं
और प्रतीक्षा कर रहे हैं
एक वास्तव में उनके अपने
आधिकारिक जीवन की।

91087 92360

वैज्ञानिक चेतना के प्रहरी : जरनैल क्रांति

करीब 84 साल पहले जन्मे जरनैल क्रांति आज तर्कशील व प्रगतिशील लोगों के बीच जाना पहचाना नाम है।

उनका जन्म 10.04.1940 को पंजाब में फतेहगढ़ जिले के गांव सांपली में बदन सिंह जी, माता पंजाब कौर जी के घर हुआ। अपनी प्राथमिक शिक्षा सरकारी प्राइमरी स्कूल रूपलहेड़ी से और मैट्रिक की पढ़ाई गरंगन गांव से पूरी करने के बाद, उन्होंने खालसा स्कूल कुराली से जे.बी.टी. किया और मई 1958 में शिक्षक बन गए। 1960 में उनका विवाह बलदेव कौर जी से हुआ, जिनसे दो पुत्र और एक पुत्री का जन्म हुआ। वामपंथी विचार होने के कारण उन्होंने अपनी और अपने बच्चों की शादी बिना दहेज के की। 1958 में उन्होंने अपने शिक्षण कैरियर की शुरुआत की थी।1967 तक शिक्षक संघर्ष के दौरान उनकी विचारधारा में ऐसा गुणात्मक परिवर्तन आया, जिसने उन्हें समाज की चेतना को धारदार और वैज्ञानिक बनाने की जिम्मेदारी दी। वे शिक्षा के कार्य के साथ ही शिक्षक संघ में अत्यंत सक्रिय रूप से कार्य करते रहे। जिला साक्षरता समिति में 28 वर्ष तक प्राध्यापक सुरजन सिंह के साथ उन्होंने कार्य किया। संघर्षों में उन्हें मीसा अधिनियम के तहत 11 महीने तक नाभा जेल में बंद रखा गया। हथकड़ी लगी होने के बावजूद उन्होंने बी.एड. की परीक्षा पास की। मोगा गोलीकांड और 1975 के आपातकाल के दौरान वे फिर पकड़े गये और उन्हें जेल जाना पड़ा। 1967 से वे लोगों के मुद्दों को उठाने और संघर्षों के माध्यम से हल करने के लिए जनसंघर्षों में कूद पड़े। उन्होंने पश्चिम बंगाल की तर्ज पर पंजाब में कोठारी कमीशन को लागू करने के लिए संघर्ष शुरू किया और संघर्षों से मिली जीत ने जरनैल सिंह मावी को गर्व से भर दिया। यहीं पर उन्होंने अपने नाम से मावी हटाकर हमेशा के लिए क्रांति जोड़ दिया। धीरे-धीरे लोग उन्हें क्रांति जी ही कहने लगे। इन्हीं दिनों जनरल क्रांति ने अदालतों में विजयी भूमिका भी निभाई और अपने सहित अन्य लोगों के जो भी अधिकार छीन लिए गए थे उनके लिए संघर्ष किया।



30.04.1998 को वे सरकारी मिडिल स्कूल, बहलोलपुर (मोहाली) से शिक्षक के रूप में सेवानिवृत्त हुए। अपने शिक्षण पेशे से सेवानिवृत्त होने के बाद भी वे समाज सेवा के कामो में लगे रहे , जिससे सेवानिवृत्त नहीं हुआ जा सकता।

वे रेजिडेंशियल वेलफेयर एसोसिएशन, फेज 4, मोहाली में लगभग 10 वर्षों तक काम करते रहे। 2008 में, उन्होंने पंजाब स्कूल शिक्षा बोर्ड मोहाली के पूरे पाठ्यक्रम में गैर-वैज्ञानिक तथ्यों पर ध्यान दिया। अपनी टीम के सहयोग से जिसमें गुरमीत खरड़, जसवन्त मोहाली, सुरजीत मोहाली, करमजीत स्क्रल्लापुरी, कुलविन्दर नगारी, हरप्रीत और सतनाम दाउं शामिल थे, ने सभी पाठ्यक्रमों की जांच की और बोर्ड को एक विस्तृत रिपोर्ट सौंपी। बोर्ड ने इस रिपोर्ट का सत्तर फीसदी हिस्सा स्वीकार कर लिया और पाठ्यक्रम में संशोधन करने का वादा किया।

कई वर्ष पहले उनका परिवार मोहाली में बस गया और 1986 में तर्कशील सोसायटी मोहाली इकाई की कमान संभाली। तर्कशील सोसायटी में इकाई व जोन स्तर पर विभिन्न पदों पर रहते हुए सोसायटी की गतिविधियों में वे सदा सक्रिय रहते हैं। बरनाला शहर में तर्कशील सोसायटी द्वारा निर्मित तर्कशील भवन के निर्माण में क्रांति जी ने दस लाख रुपए का योगदान दिया है। उन्होंने मोहाली के नजदीक बलोंगी में प्लॉट खरीदा और वर्ष 2007 में यहां पर तर्कशील सोसाइटी का कार्यालय बना दिया, जिसका नाम शहीद भगत सिंह लाइब्रेरी रखा गया, जिसमें लगभग चार हजार

किताबें हैं तथा साथ में सभी प्रमुख पत्रिकाएं यहां उपलब्ध हैं। इस लाइब्रेरी के साहित्य, रखरखाव और सफाई कर्मचारियों आदि का भुगतान वे स्वयं कर रहे हैं। उन्होंने इस लाइब्रेरी को तर्कशील सोसायटी पंजाब के नाम उपहार स्वरूप दे दिया है, जिसका स्वामित्व अब सोसायटी के पास है। गौरतलब है कि इस लाइब्रेरी की मौजूदा कीमत करीब 30 लाख रुपये है।

समाज सेवा में सक्रियता ने उन्हें लोकप्रिय बना दिया है। हर जरूरतमंद और रचनात्मक कार्य करने वाले व्यक्तियों और संस्थाओं की आर्थिक मदद करने से वे कभी पीछे नहीं हटते। वे तर्कशील मेले, सेमीनार, शिविर एवं अन्य समाज सेवा के कार्यों में वे बढ़ चढ़ कर भाग लेते हैं एंव इस मे खर्च करने में पीछे नही हटते। उनकी सेवा भावना के बदले में उन्हें समय-समय पर विभिन्न धार्मिक एवं सामाजिक संगठनों, क्लबों, सोसाइटियों एवं शैक्षणिक संस्थानों द्वारा सम्मानित किया जाता रहा है।

बरसों की परतों ने उनके शरीर को तो बूढ़ा कर दिया है, लेकिन मानसिक रूप से वे आज भी एक क्रांतिकारी युवा नजर आते हैं। 84 साल की उम्र में भी, अपनी शारीरिक कमजोरी के बावजूद वे आज भी जनसेवा के लिए अतिरिक्त समय निकालते हैं।

अपनी उम्र के पचासीवें वर्ष में प्रवेश करते हुए अपनी विचारधारा एवं भौतिकवादी दर्शन के अनुरूप उन्होंने अपने शरीर की वसीयत बनाकर उसे परिवार एवं तर्कशील सोसायटी के जिम्मेदार नेतृत्व को सौंप दिया है। जिसमें उन्होंने लिखा है कि उनके मृत शरीर का इस्तेमाल मेडिकल रिसर्च के लिए किया जाना चाहिए। साथ ही उन्होंने उनकी मृत्यु के बाद किसी भी तरह का अनुष्ठान करने से भी मना किया है।

मानसिक रूप से मजबूत क्रांति जी आज अपने जीवन जीने के तरीके से गौरवान्वित और संतुष्ट हैं। उनका सपना है कि लोगों को अंधविश्वासों , रूढ़ियों और प्रत्येक प्रकार के शोषण से मुक्ति मिले और अपने लिए एक बेहतर और जनपक्षधर समाज का निर्माण करें।

जरनैल क्रांति जी (संपर्क: 94176 89357) ने किसान आंदोलनों, शिक्षक संघर्षों, तर्कशील सोसायटी और सामाजिक कार्यों के लिए सदा संघर्ष किया है। वे अपनी सामथर्य से लोगों को जागरूक करते रहे हैं, जिस कारण उनके क्रांतिकारी कार्यों को बहुत सम्मान और प्रशंसा के साथ देखा जाता और सुना जाता है।

रिपोर्ट: गुरमीत अम्बाला, अजीत प्रदेशी व करमजीत स्क्रुल्लापुरी

आदि सत्य

प्रदीप

उजाला देने के लिए
दीये की बाती जल गई!
पेड़ पैदा करने के लिए
बीज अस्तित्वहीन हो गया!
ऐ रेशम के कीड़े!
रेशम बनाने के लिए
तुम्हारा बलिदान
शायद कोई
नई बात तो नहीं!

तुम्हारा बेटा

शेखर

माँ
तुमने ही तो बचपन से
सिखाया है मुझे सच बोलना
बोलना पाप और अन्याय के खिलाफ!
इसलिए कहता हूँ
समझो लोगों का दर्द
उसके आंसुओं की कीमत
और इजाजत दो मुझे
चलने की उस ओर
जिधर मेरे जैसे नौजवान जा रहे हैं
समय व समाज की मांग पर
नहीं तो माँ
लोग कहेंगे
तुम्हारा बेटा बागी हो गया!

वैज्ञानिकों में नास्तिकता

वेदप्रिय



जब भी सामान्य व्यक्तियों के बीच विज्ञान या वैज्ञानिकता की बात चलती है तो एक सवाल अक्सर बीच में आकर खड़ा हो जाता है। सवाल प्रायः यही होता है कि एक वैज्ञानिक तो नास्तिक ही होता होगा। तो क्या विज्ञान की पढ़ाई नास्तिकता की पढ़ाई होती है? नहीं ,ऐसा बिल्कुल नहीं है। दरअसल यह सवाल ही विज्ञान से जुड़ा सवाल नहीं है। अधिकतर यह सवाल इसलिए भी किया जाता है कि कुछ व्यक्ति वैज्ञानिकता की बहस से या तो बचना चाहते हैं या इसे गलत दिशा देना चाहते हैं। कुछ व्यक्ति शायद इसलिए ऐसा करते हों कि विज्ञान की यथोचित स्वीकार्यता स्वीकार करने पर उनके सामने जीवन-व्यवहार में परिवर्तन की दरकार न आ जाए। यह भी हो सकता है कि युगों से चली आ रही मान्यताएं जो अब झूठी पड़ती जा रही है और उन्हें त्यागने में उनका जी दुख पा रहा है ।

आस्तिकता व नास्तिकता का सवाल आस्था का सवाल है। यह विज्ञान का सवाल नहीं है। एक वैज्ञानिक पर क्यों यह तोहमत लगाई जाए या अतिरिक्त दबाव डाला जाए कि वह इस सवाल का जवाब दे। एक वैज्ञानिक तो प्रकृति का अवलोकनकर्ता होता है। वह यह जानने- समझने की कोशिश करता है कि यह प्रकृति क्या है, यह कैसे व्यवहार करती है, यह ऐसा ही व्यवहार क्यों करती है, इसके विभिन्न घटकों के बीच क्या संबंध है, इस में घटित होने वाली घटनाओं की क्या प्रक्रिया है, आदि आदि।

आज तक कभी भी किसी बड़े वैज्ञानिक ने अपनी ऊर्जा या बौद्धिक श्रम इस प्रकार की बातों में नहीं लगाया कि वह नास्तिकता की खोज करें। कभी किसी बड़ी प्रयोगशाला में यह सब ढूंढने या जानने के लिए उपकरणों व प्रयोगों का सामान नहीं जुटाया गया और ना ही इस संबंध में कभी कोई प्रोजेक्ट तैयार किया गया कि वह नास्तिकता को सिद्ध करे। एक वैज्ञानिक हमेशा अपने मापन में आने वाले आंकड़ों व अवलोकनों पर भरोसा करता है।वह मापन में आने वाली भौतिक राशियों को अपनी खोज का आधार बनाता है। निस्संदेह वह कल्पनाशीलता का प्रयोग करता है।

यदि संयोगवश अनअपेक्षित पाया जाता है तो वह इस पर और ज्यादा प्रयोग करता है। और जब तक उसके पीछे के कारणों की पुष्टि नहीं हो जाती वह इसे स्वीकार नहीं करता। इन सभी प्रक्रियाओं से गुजरते हुए वह एक विधि की ओर बढ़ता है जिसे वह वैज्ञानिक विधि मानता है। यह निरंतर अपडेट होती रहती है। विवादास्पद परिस्थितियों में वैज्ञानिक, विज्ञान विधि पर ही सहमत होते हैं। लेकिन यह भी सही है कि हर युग में एक वैज्ञानिक को आस्तिकता के प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है।

हम अपने विमर्शों में इंट्रडिसीप्लिनरी अप्रोच की बात करते हैं। यदि इस दृष्टिकोण से आस्था के प्रश्नों को देखा जाए तो बहुत से अन्य कोणों के साथ हमें इसकी बात करनी पड़ेगी। यहां हम विज्ञान को छोड़ नहीं सकते। विज्ञान की मूल प्रवृत्ति ही है-प्रश्न उठाना। विज्ञान, आस्था के सभी प्रस्तावित उत्तरों पर सवाल खड़े करना चाहेगा। यदि इन उत्तरों की व्याख्याएं स्पष्ट नहीं है या वस्तुनिष्ठ नहीं है तो विज्ञान इन्हें सहज स्वीकार नहीं करेगा। यदि काफी प्रयासों के बाद भी कुछ पता नहीं चल पाए तो 'चलो मान लेते हैं' कि मनोस्थिति की एक बात है। यह क्षणिक लाचारी ही होनी चाहिए। लेकिन विज्ञान ने न जानने व ढूंढने की प्रवृत्ति से पीछे हटना नहीं स्वीकारा है। जानने की दिशा में वह आगे ही बढ़ता आया है। न मानने के लिए तर्क लगा अस्वीकृत करना होता है। यह एक कठिन काम है। 'चलो मान लेते हैं' कहने में क्या जाता है। यह कहकर इतिश्री करना बड़ा आसान है। लेकिन इसके प्रभाव बहुत दूर तक जाते हैं। क्योंकि क्यों मान लिया गया है इस पर सवाल प्रायः नहीं उठाए जाते।

विश्वास करना (आस्था) क्या केवल मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का विषय है या इसका भी कोई जैव रासायनिक आधार है, या यह दोनों है। या इनके अलावा भी और कुछ है। हम सब जानते हैं कि हमारे विश्वासों से ही हमारा जीवन चलता है। यह सही है कि ये हमारे मस्तिष्क में बनते हैं। लेकिन ये कोई अकस्मात थोड़े ही बन **शेष पृष्ठ 48 पर**

कवितायें

सावधान सर्वहारा

– राजू

आधे पेट तू दिनभर खटता,
फिर भी नाम उसी का रटता।
घर पर बच्चा बीमार पड़ा है,
सिर पर साहूकार खड़ा है।
खुद की तेरी हालत खस्ता,
तेरा अब न कोई बचने का रस्ता!

आटा महंगा, तेल है महंगा,
कमरा और किरया महंगा।
महंगे चावल, दालें हैं
किरोसिन के भी लाले हैं।
इन सब चीजों में से,
खून आदमी का सबसे सस्ता!

लाला जी की तोंद बढ़ी है,
बाहर इमोपर्टेड कार खड़ी है
नित कल्ब और सैर सपाटा,
घूमने लंदन, अमरीका जाता।
फाइव स्टारों में लंच और डिनर
फिर भी मिल में दिखाए घाटा!

सेठ का कुत्ता तुझसे बेहतर,
उसकी रोटी घी से तर।
रूखी-सूखी तेरे बच्चे खाते,
और जमीं पर नंगे सो जाते।
मर-मर के तूं मांड पी रहा,
भूखे दिन और काली रातें!

पार्लियामेंट में बैठे नेता,
महंगाई पर रोक लगाएं।
गरमा-गरमी बहस, झड़पें,
वाक आउट भी करते जाएं।
पर देखो इनके खेल निराले,
महंगाई दिन-रात बढ़ती जाए!

गरीबी हटाओ का नारा देकर,
तुमको हैं ये मूर्ख बनाते।
लाठी, गोली, बूथ कैपचरिंग करके,
संसद में कुर्सी हथियाते।
निचोड़ गरीबों का खून-पसीना,
अपने कोठे भरते जाते!

मजदूरों का नाम जपकर,
सत्ता पर काबिज हो जाते।
दमन, शोषण और भ्रष्टाचार में,
ये भी भइया हाथ बंटाते!

संशोधनवादी हैं ये सब,
सम्राज्यावाद के दलाल हैं।
पूँजीपतियों कि झूठन चाटते,
ये हिन्दुस्तानी 'लाल' हैं
सावधान ए सर्वहारा!
ये तुम्हारी एकता के काल हैं!

क्या-क्या सोच शहर तू आया,
अपना घर-परिवार गंवाया।
दर-दर की रे ठोकरें खाए,
फिर भी तेरी समझ न आया।
तूं क्यों बदलाह, बेहाल है
तेरी इस हालत का रे भइया
कौन असली जिम्मेदार है!

अ से अनार लिखा
उन्होंने कहा
आह ! कितना सुन्दर
आ से आम लिखा
उन्होंने आम के गुण गाए
जब अ से अधिकार लिखा
वे भड़क गए।

– जसिंता केरकेट्टा

कौन-सी कविताएं

- नरेश सक्सेना

जैसे चिड़ियों की उड़ान में
शामिल होते हैं पेड़
क्या मुसीबत में
कविताएँ होंगी हमारे साथ?

जैसे युद्ध में काम आए सैनिक के
शस्त्रों और वर्दी के साथ-साथ
खून में डूबी मिलती है
उसके बच्चों की तस्वीर
क्या कोई पंक्ति डूबेगी खून में ?

जैसे चिड़ियों की उड़ा में
शामिल होते हैं पेड़
मुसीबत के वक्त
कौन-सी कविताएँ होंगी
हमारे साथ
लड़ाई के लिए उठे हाथों में
कौन-से शब्द होंगे?

शो पीस

- पंकज गर्ग

ए नारी!
क्यों तुम्हारे जीवन की पूर्णता
विवाह में ही निहित है
क्यों समाज के तराजू में तुम
उससे बहुत हल्की पड़ती हो
क्यों वह स्कूल जाता है
और तुम चक्की में सड़ती हो?

कैसे सह लेते हो वो आँखे
जो तुम्हारे एक रात बाहर रहने पर
तुम्हें चीर देना चाहती हैं
जबकि उसके घर आ जाने पर
घी के दिए जलाए जाते हैं।

क्यों हर बार अग्नि परीक्षा
तुम्हें ही देनी पड़ती है।
क्यों तुम रानी होकर भी
धोबी से छोटी पड़ जाती हो?

क्यों युधिष्ठर बाँट देते हैं
तुम्हें पाँच भागों में
मानो तुम इंसान नहीं
कोई आलू-टमाटर हो!

कैसे गा लेती हो,
तुलसीदास का 'रामचरितमानस'
जहां
'नारी को ताड़न का अधिकारी'
बताया जाता है!

कैसे बन जाती हो
उसकी हवस का शिकार
जो तुम्हें हमेशा
किरोसिन की बोतल के
मुंह पर रखता हैं!

कैसे सह लेती हो उसका हस्तक्षेप
माँ के पेट से लेकर
धरती के गर्व तक
क्यों सहने को मान चुकी हो
अपनी नियति!

उठो ए नारी!
और तोड़ दो वह
शीशे की चारदीवारी
जिसमें हजारों साल से कैद हो तुम
एक शो पीस की तरह!

औरत

- उदय प्रकाश

मानव सृष्टि के इतिहास में
वह एक दरिंदा रहा होगा
जिसने तुम्हारी खूबसूरती को
सदा-सदा के लिए
अपनी भुजाओं में भींचने की खातिर

तुम्हारी आबरू का
नारा बुलंद किया होगा!
औरत! तुम्हारी गुलामी का इतिहास
यहीं से शुरू होता है!
तुम्हारी स्तुति में
उसने स्त्रोतों की रचना की
तुम पर अपना हक जताने के लिए
उसने प्रशंसा का काला जादू फेंक मारा
और देखते ही देखते
उसने तुम्हें पवित्रता के
बंधनों में बांध दिया!
पवित्रता के सारे ही बंधन
सिर्फ तुम्हारे ही शरीर पर लागु होते हैं
औरत!
तुम तक ऐतिहासिक साजिश का शिकार हो
मैंने जब भी तुम्हारी आँखों में
झांककर देखा है
मुझे उनमें तिलमिलाते भय के सिवाय
कुछ भी नहीं मिला है।
बार-बार
तुमने मेरी भाजुओं को थामकर
अपनी सुरक्षा की गारंटी मांगी है
औरत! तुम्हारा यौवन
पवित्रता के भारी बोझ से दबकर
आखिर कब तक
मुझसे अपनी सुरक्षा की
भीख मांगता रहेगा!

पृष्ठ 35 का शेष रीति-रिवाजों का पालन करने वाले लोगों में थोड़ी वृद्धि हुई है (हालाँकि इन देशों में अंधविश्वासों की विविधता और पहुंच भारत की स्थिति की तुलना में कहीं नहीं है)। पूंजीवादी बाजार में अनिवार्य रूप से मांग और आपूर्ति भी जुड़ी हुई है और कितने लोग इन अंधविश्वासों के आधार पर लाखों-करोड़ों रुपये कमा रहे हैं। आज भारत में आजादी के बाद से ही अंधविश्वासों को खुला सरकारी संरक्षण प्राप्त होता रहा है।

अंत में, यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि आज आम तौर पर इन मिथकों, रीति-रिवाजों और अंधविश्वासों के खिलाफ लड़ाई न केवल इन विचारों के खिलाफ लड़ाई है, बल्कि संपूर्ण वर्तमान संरचना और इस संरचना के संरक्षक के खिलाफ लड़ाई है, जो न केवल इन अंधविश्वासों को बढ़ावा दे रही है बल्कि इसे सही ठहराने के लिए तरह-तरह के 'वैज्ञानिक तर्क' भी ईजाद कर रही है। आज के दोहरे कार्य हैं आम लोगों को शिक्षित करके इन अंधविश्वासों से मुक्त करना और साथ ही उन्हें पूंजीवादी व्यवस्था दमनकारी ढांचे के खिलाफ लड़ने के लिए तैयार करना, इन दोनों कार्यों में से किसी एक की भी उपेक्षा करना लोगों की मुक्ति की परियोजना को गुमराह करने के समान होगा, दोनों मोर्चो पर ही लड़ना जरूरी है।

संसोधिन एवं अनुवादः गुरमीत अम्बाला

पृष्ठ 45 का शेष गए। पहले ये हमारे प्रबोधन का हिस्सा बनते हैं। इनसे पहले पहले कुछ stimulii आते हैं। ये हर मनुष्य को एक सम्बल प्रदान करते हैं। विश्वासों के बनने के लिए ये stimulii ही काम करते हैं। ये कई स्रोतों से आते हैं। इनमें आंशिक व्यवहारिकता हो सकती है, इनमें परंपरामोह हो सकता है, न मानने के लिए किए जाने वाले बौद्धिक श्रम से बचते हुए सुगमता का रास्ता चुने जाने की प्रवृत्ति हो सकती है, संज्ञान प्रक्रिया की पेचीदगियों में कुछ छूटे हुए यथार्थ का अमूर्तिकरण भी इनमें शामिल हो सकता है। निस्संदेह परंपराएं एवं मान्यताएं हमारी संस्कृति का हिस्सा हैं और ये एक दिन में नहीं बनी हैं। इनके साथ हमारी भावनाएं जुड़ी हुई हैं। हो सकता है पूर्ण साक्ष्यों के अभाव में निभाए जाने की लाचारी हो या इनके पीछे सहजता में लेते हुए अधूरे सत्य को ही स्वीकार करने की मानसिकता काम कर रही हो। संस्कृति की बात विज्ञान में अभी नई-नई है। आज के दिन वैज्ञानिक अभी तो वैज्ञानिकता के मानक ही स्थापित कर रहे हैं। विज्ञान का अब तक का सफर तमाम प्रकार की अतार्किकताओं से लड़ते हुए तय हुआ है। यदि परंपराएं या मान्यताएं वर्तमान समाज के विकास में अवरोध बनती हैं तो हम इनका अनावश्यक बोझ क्यों ढोएं? हम इनकी पुनरसमीक्षा नई रोशनी में क्यों न करें? एक समय पर इनकी भूमिका किसी और रूप में रही होगी उस क्षेत्र की तात्कालिक जरूरत पर बहस कर सकते हैं।

(लेखक हरियाणा के वरिष्ठ विज्ञान लेखक एवं विज्ञान संचारक हैं तथा हरियाणा विज्ञान मंच से जुड़े हैं)

भगत सिंह के साथी क्रांतिकारी डॉ. गया प्रसाद ने काटा था काला पानी कैद, अब पत्नी ने किया देह प्रदान



कानपुर -देश के नाम जो कुछ भी अर्पण किया जाए, कम है। 94 वर्ष की निर्मला कटियार यही सिखा गईं। उनके परिवार ने उनका देह प्रदान मेडिकल कॉलेज को किया। वह क्रान्तिकारी चंद्रशेखर आजाद और भगत सिंह के साथी डॉ. गया प्रसाद कटियार की जीवन साथन थी। डॉ. कटियार ने असेंबली बम कांड के बाद काला पानी की सजा काटी थी।

देह प्रदान से पहले निर्मला कटियार को ''गार्ड आफ ऑनर'' दिया गया। इंदिरा नगर, कल्याणपुर निवासी उनके पुत्र क्रांति कटियार ने देह प्रदान अभियान प्रमुख मनोज सेंगर को उनकी मृत्यु की जानकारी दी। डॉ. शालिनी मोहन की सहायता से उनका नेत्र प्रदान भी कराया गया। देह प्रदान अभियान प्रमुख मनोज सेंगर ने बताया कि डॉ. गया प्रसाद उन 12 लोगों में थे, जिन्हें लाहौर केस में कालेपानी की सजा हो गई थी। निर्मला देवी ने 2009 में देह प्रदान भी संकल्प लिया था। माधवी सेंगर ने प्राचार्य डॉ. संजय काला और एनाटमी प्रभारी डॉ. प्रमोद कुमार को पत्रक दिए। देह प्रदान के वक्त स्वतंत्र कटियार, विधायक नीलिमा कटियार, डॉ. सुमन बाला कटियार, पौत्र आजाद कटियार, शौर्य कटियार, पौत्री विप्लवी कटियार, मित्र प्रताप साहनी, रमेशचंद्र, प्रखर श्रीवास्तव और देव कुमार आदि उपस्थित रहे।

इलाज की आड़ में क्रांति, चर्चित लाहौर षड्यंत्र केस में डॉ. गया प्रसाद बनाए गए थे मुल्जिम

बिल्हौर खजूरी गांव में जन्मे डॉ. गयाप्रसाद की कहानी पत्रिका 'हिन्दुस्तान' को दो वर्ष पहले निर्मला देवी ने ही सुनाई थी। इसके मुताबिक डॉ. गया प्रसाद ने वैद्यकी सीखने के बाद 1918में जगदीशपुर में दवाखाना खोल लिया था। चोरीचौरा कांड के बाद वह गणेश शंकर विद्यार्थी के जरिए आजाद, भगत सिंह आदि के संपर्क में आकर उनके लिए बम बनाने लगे। 8अप्रैल 1929 को दिल्ली असेंबली कांड के बाद वह सहारनपुर में पकड़े गए। उन्हें लाहौर, रावलपिंडी, कोलकाता, बेल्लारी, अंडमान-निकोबार, नैनी... हर जेल में रख कर यातनाएं दी गईं। चर्चित लाहौर षड्यंत्र केस में मुल्जिम बनाए गए। कई वर्ष तक उन्हें काले पानी की सजा भोगनी पड़ी। 10 फरवरी 1993 को उनकी मृत्यु हुई।

मारे जाएंगे

जो बोलेंगे
वे तो मारे ही जाएंगे
वे भी मारे जाएंगे
जो चुप रहेंगे
जो गाएंगे विरुदावलियाँ
पढ़ेंगे कसीदे, चाटेंगे तलवे
बचेंगे वे भी नहीं !
आग की दुकान खोले
बसे हैं बीच बाजार,
एक हों या हों हजार
जलेगी उनकी भी होली,
विवेकहीन होती है आग
कुछ मरेंगे जलकर,
कुछ मारकर जलाए जाएंगे !

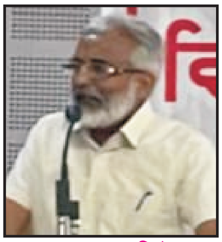
जो जुलूस में शामिल हैं,
वे तो मरेंगे ही
जो छिपे आरामगाहों में
एक रोज वे भी मारे जाएंगे
मारे जाने से ठीक पहले
कुछ लोग होंगे जिंदा
पर जो पहले से ही मरे हैं,
वे भी मारे जाएंगे !

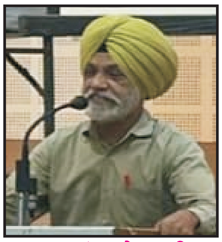
- हूबनाथ

जुलाई-अगस्त 2024 Reg. No. HARHIN/2014/60580 वर्ष 11 अंक 4

प्रथम राज्यस्तरीय वैज्ञानिक चेतना कार्यशाला की झलकियां


बलबीर लोंगोवाल


राजपाल सिंह


जसवंत मोहाली


डा. राजेन्द्रपाल


गुरप्रीत शहिणा


डा. गगनदीप सिंह


जगतार सिंह


चमत्कार नहीं विज्ञान: जसविंदर सिंह पटियाला


विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए, राज्य प्रभारी राजेन्द भदौड़


वैज्ञानिक चेतना कैम्प: सवेर की शुरुआत


वैज्ञानिक चेतना कार्यशाला, बरनाला (पंजाब) में शामिल हुए विद्यार्थी

If undelivered please return to :

Tarksheel

Tarksheel Bhawan, Tarksheel Chowk,
Sanghera By Pass, BARNALA-148101
Post Box No. 55
Cell. 98769 53561, 98728 74620
Web : www.tarksheel.org
e-mail : tarkshiloffice@gmail.com

BOOK POST
(Printed Matter)

To ....

....

....